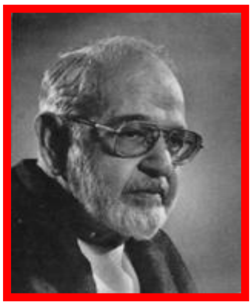

ज्ञानपीठ पुरस्कार : हिन्दी

संकलनकर्ता :-

डॉ. सुनील कुमार परीट

बेलगावी, कर्नाटक

08867147505, 09480006858

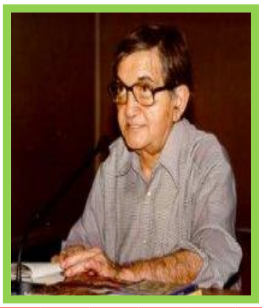

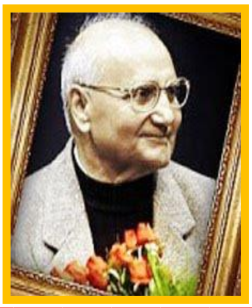

ज्ञानपीठ पुरस्कार

ज्ञानपीठ पुरस्कार की शुरुआत 1965 में हुई । 1968 में हिंदी के लिए पहला ज्ञानपीठ (सुमित्रानन्दन पंत की कृति चिदम्बरा को) मिला । शुरुआत में यह पुरस्कार कृति को दिया जाता था लेकिन 1982 में कृति के लिए अंतिम ज्ञानपीठ (महादेवी वर्मा की कृति यामा को) दिया गया । इसके बाद यह कृति विशेष की बजाए साहित्यकार को दिया जाने लगा ।

हिंदी की झोली में आए ज्ञानपीठ पुरस्कार -

अब तक हिंदी के दस साहित्यकार साहित्य के इस सर्वोच्च सम्मान को प्राप्त कर चुके हैं । इनके नाम इस प्रकार हैं -

1968 - चिदम्बरा (सुमित्रानन्दन पंत)

1972 - उर्वशी (रामधारी सिंह दिनकर)

1978 - कितनी नावों में कितनी बार (अज्ञेय)

1982 - यामा (महादेवी वर्मा)

1992 - नरेश मेहता

1999 - निर्मल वर्मा

2005 - कुँवर नारायण

2009 - अमरकांत और श्रीलाल शुक्ल

2013 - केदारनाथ सिंह

१. सुमित्रानंदन पंत

500
भारत INDIA
2015
सुमित्रानंदन पंत
SUMITRANANDAN PANT

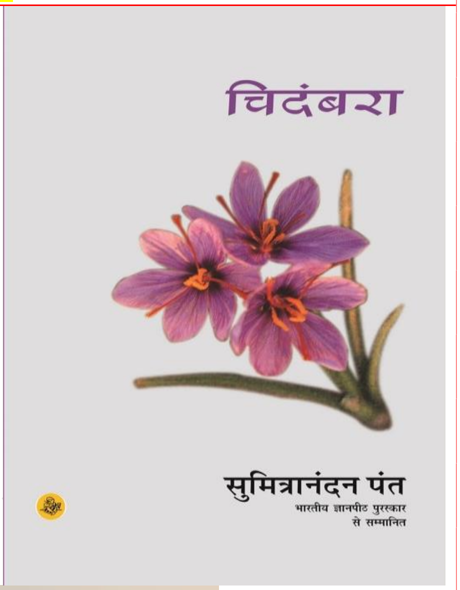

चिदंबरा
सुमित्रानंदन पंत
भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित

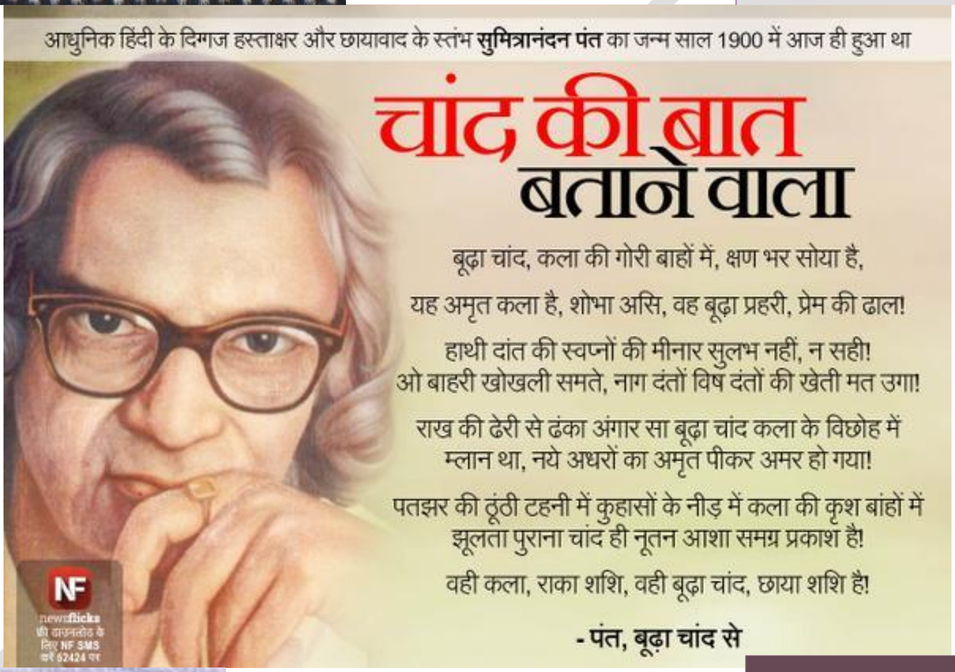

आधुनिक हिंदी के दिग्गज हस्ताक्षर और छायावाद के स्तंभ सुमित्रानंदन पंत का जन्म साल 1900 में आज ही हुआ था
चांद की बात बताने वाला
बूढ़ा चांद, कला की गोरी बाहों में, क्षण भर सोया है,
यह अमृत कला है, शोभा असि, वह बूढ़ा प्रहरी, प्रेम की ढाल!
हाथी दांत की स्वप्नों की मीनार सुलभ नहीं, न सही!
ओ बाहरी खोखली समते, नाग दंतों विष दंतों की खेती मत उगा!
राख की ढेरी से ढंका अंगार सा बूढ़ा चांद कला के विछोह में
म्लान था, नये अधरों का अमृत पीकर अमर हो गया!
पतझर की ठूंठी टहनी में कुहासों के नीड़ में कला की कृश बांहों में
झूलता पुराना चांद ही नूतन आशा समग्र प्रकाश है!
वही कला, राका शशि, वही बूढ़ा चांद, छाया शशि है!
- पंत, बूढ़ा चांद से
NF
newsflicks

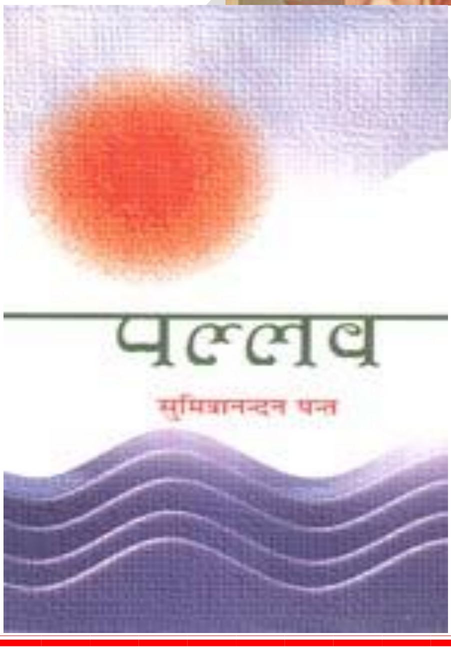

पल्लव
सुमित्रानन्दन पन्त

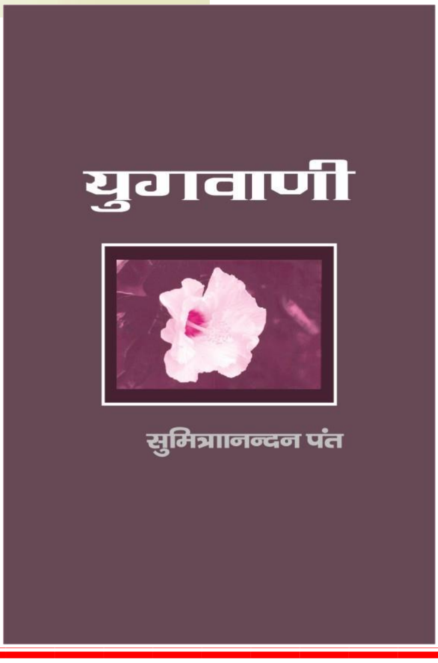

युगवाणी
सुमित्राानन्दन पंत

सुमित्रानंदन पंत

जन्म:	२० मई, १९०० कौसानी, बागेश्वर, उत्तराखंड, भारत
मृत्यु:	२८ दिसम्बर, १९७७ इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत
कार्यक्षेत्र:	अध्यापक, लेखक
राष्ट्रीयता:	भारतीय
भाषा:	हिन्दी
काल:	आधुनिक काल
विधा:	पद्य
विषय:	गीत, कविताएँ
साहित्यिक आन्दोलन:	छायावाद, रहस्यवाद व प्रगतिवाद
प्रमुख कृति(याँ):	चिदंबरा कविता संग्रह
हस्ताक्षर:	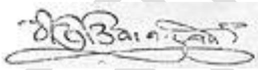

सुमित्रानंदन पंत (२० मई १९०० - २८ दिसम्बर १९७७) हिंदी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। इस युग को जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और रामकुमार वर्मा जैसे कवियों का युग कहा जाता है। उनका जन्म बागेश्वर में हुआ था। झरना, बर्फ, पुष्प, लता, भंवरा गुंजन, उषा किरण, शीतल पवन, तारों की चुनरी ओढ़े गगन से उतरती संध्या ये सब तो सहज रूप से काव्य का उपादान बने। निसर्ग के उपादानों का प्रतीक व बिम्ब के रूप में प्रयोग उनके काव्य की विशेषता रही। उनका व्यक्तित्व भी आकर्षण का केंद्र बिंदु था, गौर वर्ण, सुंदर सौम्य मुखाकृति, लंबे घुंघराले बाल, उंची नाजुक कवि का प्रतीक समा शारीरिक सौष्ठव उन्हें सभी से अलग मुखरित करता था।[1]

बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध छायावादी कवियों का उत्थान काल था। उसी समय अल्मोड़ा निवासी सुमित्रानंदन पंत उस नये युग के प्रवर्तक के रूप में हिन्दी साहित्य में अभिहित हुये। इस युग को जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' और रामकुमार वर्मा जैसे छायावादी प्रकृति उपासक-सौन्दर्य पूजक कवियों का युग कहा जाता है। सुमित्रानंदन पंत का प्रकृति चित्रण इन सबमें श्रेष्ठ था। उनका जन्म ही बर्फ़ से आच्छादित पर्वतों की अत्यंत आकर्षक घाटी अल्मोड़ा में हुआ था, जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य उनकी आत्मा में आत्मसात हो चुका था। झरना, बर्फ, पुष्प, लता, भंवरा गुंजन, उषा किरण, शीतल पवन, तारों की चुनरी

डॉ. सुशील कुमार परीट

ओढ़े गगन से उतरती संध्या ये सब तो सहज रूप से काव्य का उपादान बने। निसर्ग के उपादानों का प्रतीक व बिम्ब के रूप में प्रयोग उनके काव्य की विशेषता रही। उनका व्यक्तित्व भी आकर्षण का केंद्र बिंदु था, गौर वर्ण, सुंदर सौम्य मुखाकृति, लंबे घुंघराले बाल, उंची नाजुक कवि का प्रतीक समा शारीरिक सौष्ठव उन्हें सभी से अलग मुखरित करता था।

जीवन परिचय

पंत का जन्म अल्मोड़ा ज़िले के कौसानी नामक ग्राम में २० मई १९०० ई. को हुआ। जन्म के छह घंटे बाद ही उनकी माँ का निधन हो गया। उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। उनका प्रारंभिक नाम गुसाई दत्त रखा गया।[2] वे सात भाई बहनों में सबसे छोटे थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा अल्मोड़ा में हुई। १९१८ में वे अपने मँझले भाई के साथ काशी आ गए और क्वींस कॉलेज में पढ़ने लगे। वहाँ से माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण कर वे इलाहाबाद चले गए। उन्हें अपना नाम पसंद नहीं था, इसलिए उन्होंने अपना नया नाम सुमित्रानंदन पंत रख लिया। यहाँ म्योर कॉलेज में उन्होंने बारवीं में प्रवेश लिया। १९२१ में असहयोग आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी के भारतीयों से अंग्रेजी विद्यालयों, महाविद्यालयों, न्यायालयों एवं अन्य सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार करने के आहवान पर उन्होंने महाविद्यालय छोड़ दिया और घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी भाषा-साहित्य का अध्ययन करने लगे।इलाहाबाद में वे कचहरी के पास प्रकृति सौंदर्य से सजे हुए एक सरकारी बंगले में रहते थे। उन्होंने इलाहाबाद आकाशवाणी के शुरुआती दिनों में सलाहकार के रूप में भी कार्य किया। उन्हें मधुमेह हो गया था। उनकी मृत्यु २८ दिसम्बर १९७७ को हुई।

जन्म और परिवार

सुमित्रानंदन पंत (मई 20, 1900 - 1977) हिंदी में छायावाद युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उनका जन्म अल्मोड़ा ज़िले के कौसानी नामक ग्राम में मई 20, 1900 को हुआ। जन्म के छह घंटे बाद ही माँ को क्रूर मृत्यु ने छीन लिया। शिशु को उसकी दादी ने पाला पोसा। शिशु का नाम रखा गया गुसाई दत्त। वे सात भाई बहनों में सबसे छोटे थे।

शिक्षा

गुसाई दत्त की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा अल्मोड़ा में हुई। सन् १९१८ में वे अपने मँझले भाई के साथ काशी आ गए और क्वींस कॉलेज में पढ़ने लगे। वहाँ से मैट्रिक उत्तीर्ण करने के बाद वे इलाहाबाद चले गए। उन्हें अपना नाम पसंद नहीं था, इसलिए उन्होंने अपना नाम रख लिया - सुमित्रानंदन पंत। यहाँ म्योर कॉलेज में उन्होंने इंटर में प्रवेश लिया। महात्मा गांधी के आह्मवान पर अगले वर्ष उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया और घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी का अध्ययन करने लगे।

कार्यक्षेत्र

सुमित्रानंदन सात वर्ष की उम्र में ही जब वे चौथी कक्षा में पढ़ रहे थे, कविता लिखने लग गए थे। सन् १९०७ से १९१८ के काल को स्वयं कवि ने अपने कवि-जीवन का प्रथम चरण माना है। इस काल की कविताएँ वीणा में संकलित हैं। सन् १९२२ में उच्छवास और १९२८ में पल्लव का प्रकाशन हुआ। सुमित्रानंदन पंत की कुछ अन्य काव्य कृतियाँ हैं - ग्रंथि, गुंजन, ग्राम्या, युंगात, स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन, निदेबरा, सत्यकाम आदि। उनके जीवनकाल में उनकी २८ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें कविताएं, पद्य-नाटक और निबंध शामिल हैं। श्री सुमित्रानंदन पंत अपने विस्तृत वाङमय में एक विचारक, दार्शनिक और मानवतावादी के रूप में सामने आते हैं किंतु उनकी सबसे कलात्मक कविताएं 'पल्लव' में संकलित हैं, जो 1918 से 1925 तक लिखी गई ३२ कविताओं का संग्रह है।

साहित्यिक परिचय

अल्मोड़ा में तब कई साहित्यिक व सांस्कृतिक गतिविधियां होती रहती थीं जिसमें पंत अक्सर भाग लेते रहते। स्वामी सत्यदेव जी के प्रयासों से नगर में 'शुद्ध साहित्य समिति' नाम से एक पुस्तकालय चलता था। इस पुस्तकालय से पंत जी को उच्च कोटि के विद्वानों का साहित्य पढ़ने को मिलता था। कौसानी में साहित्य के प्रति पंत जी में जो अनुराग पैदा हुआ वह यहां के साहित्यिक वातावरण में अब अंकुरित होने लगा। कविता का प्रयोग वे सगे सम्बन्धियों को पत्र लिखने में करने लगे। शुरुआती दौर में उन्होंने 'बागेश्वर के मेले', 'वकीलों के धनलोलुप स्वभाव' व 'तम्बाकू का धुंआ' जैसी कुछ छुटपुट कविताएं लिखी। आठवीं कक्षा के दौरान ही उनका परिचय प्रख्यात नाटककार गोविन्द बल्लभ पंत, श्यामाचरण दत्त पंत, इलाचन्द्र जोशी व हेमचन्द्र जोशी से हो गया था। अल्मोड़ा से तब हस्तलिखित पत्रिका 'सुधाकर' व 'अल्मोड़ा अखबार' नामक पत्र निकलता था जिसमें वे कविताएं लिखते रहते। अल्मोड़ा में पंत जी के घर के ठीक उपर स्थित गिरजाघर की घण्टियों की आवाज़ उन्हें अत्यधिक सम्मोहित करती थीं। अक्सर प्रत्येक रविवार को वे इस पर एक कविता लिखते। 'गिरजे का घण्टा' शीर्षक से उनकी यह कविता सम्भवतः पहली रचना है-

सुमित्रानंदन पंत कविता पढ़ते हुए

नभ की उस नीली चुप्पी पर घण्टा है एक टंगा सुन्दर
जो घड़ी घड़ी मन के भीतर कुछ कहता रहता बज बज कर

दुबले पतले व सुन्दर काया के कारण पंत जी को स्कूल के नाटकों में अधिकतर स्त्री पात्रों का अभिनय करने को मिलता। 1916 में जब वे जाड़ों की छुट्टियों में कौसानी गये तो उन्होंने 'हार' शीर्षक से 200 पृष्ठों का 'एक खिलौना' उपन्यास लिख डाला। जिसमें उनके किशोर मन की कल्पना के नायक नायिकाओं व अन्य पात्रों की मौजूदगी थी। कवि पंत का किशोर कवि जीवन कौसानी व अल्मोड़ा में ही बीता था। इन दोनों जगहों का वर्णन भी उनकी कविताओं में मिलता है।[2]

सुख-दुख | **कविता** (काव्य) 170

रचनाकार: सुमित्रानंदन पंत | Sumitranandan Pant

मैं नहीं चाहता चिर-सुख,
मैं नहीं चाहता चिर-दुख,
सुख दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख !

सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन;
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन !

जग पीड़ित है अति-दुख से
जग पीड़ित रे अति-सुख से,

मानव-जग में बँट जाएँ
दुख सुख से औ' सुख दुख से !

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न;
दुख-सुख की निशा-दिवा में,
सोता-जगता जग-जीवन !

यह साँझ-उषा का आँगन,
आलिंगन विरह-मिलन का;
चिर हास-अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का !
- सुमित्रानंदन पंत

स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

हरिवंशराय बच्चन, सुमित्रानंदन पंत और रामधारी सिंह 'दिनकर'

1921 के असहयोग आंदोलन में उन्होंने कॉलेज छोड़ दिया था, पर देश के स्वतंत्रता संग्राम की गंभीरता के प्रति उनका ध्यान 1930 के नमक सत्याग्रह के समय से अधिक केंद्रित होने लगा, इन्हीं दिनों संयोगवश उन्हें कालाकांकर में ग्राम जीवन के अधिक निकट संपर्क में आने का अवसर मिला। उस ग्राम जीवन की पृष्ठभूमि में जो संवेदन उनके हृदय में अंकित होने लगे, उन्हें वाणी देने का प्रयत्न उन्होंने युगवाणी (1938) और ग्राम्या (1940) में किया। यहाँ से उनका काव्य, युग का जीवन-संघर्ष तथा नई चेतना का दर्पण बन जाता है। स्वर्णकिरण तथा उसके बाद की रचनाओं में उन्होंने किसी आध्यात्मिक या दार्शनिक सत्य को वाणी न देकर व्यापक मानवीय सांस्कृतिक तत्त्व को अभिव्यक्ति दी, जिसमें अन्न प्राण, मन आत्मा, आदि मानव-जीवन के सभी स्वरों की चेतना को संयोजित करने का प्रयत्न किया गया।

काव्य एवं साहित्य की साधना

पंतजी संघर्षों के एक लंबे दौर से गुज़रे, जिसके दौरान स्वयं को काव्य एवं साहित्य की साधना में लगाने के लिए उन्होंने अपनी आजीविका सुनिश्चित करने का प्रयास किया। बहुत पहले ही उन्होंने यह समझ लिया था कि उनके जीवन का लक्ष्य और कार्य यदि कोई है, तो वह काव्य साधना ही है। पंत की भाव-चेतना महाकवि रबींद्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी और श्री अरबिंदो घोष की रचनाओं से प्रभावित हुई। साथ ही कुछ मित्रों ने मार्क्सवाद के अध्ययन की ओर भी उन्हें प्रवृत

किया और उसके विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पक्षों को उन्होंने गहराई से देखा व समझा। 1950 में रेडियो विभाग से जुड़ने से उनके जीवन में एक ओर मोड़ आया। सात वर्ष उन्होंने 'हिन्दी चीफ़ प्रोड्यूसर' के पद पर कार्य किया और उसके बाद साहित्य सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे।

युग प्रवर्तक कवि

हरिवंशराय बच्चन और सदी के महानायक अमिताभ बच्चन के साथ महाकवि सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक युग प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने भाषा को निखार और संस्कार देने, उसकी सामर्थ्य को उद्घाटित करने के अतिरिक्त नवीन विचार व भावों की समृद्धि दी। पंत सदा ही अत्यंत सशक्त और ऊर्जावान कवि रहे हैं। सुमित्रानंदन पंत को मुख्यत: प्रकृति का कवि माना जाने लगा। लेकिन पंत वास्तव में मानव-सौंदर्य और आध्यात्मिक चेतना के भी कुशल कवि थे।

रचनाकाल

पंत का पल्लव, ज्योत्सना तथा गुंजन का रचनाकाल काल (1926-33) उनकी सौंदर्य एवं कला-साधना का काल रहा है। वह मुख्यत: भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण की आदर्शवादिता से अनुप्राणिक थे। किंतु युगांत (1937) तक आते-आते बहिर्जीवन के खिंचाव से उनके भावात्मक दृष्टिकोण में परिवर्तन आए। पन्तजी की रचनाओं का क्षेत्र बहुविध और बहुआयामी है। आपकी रचनाओं सा संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

महाकाव्य

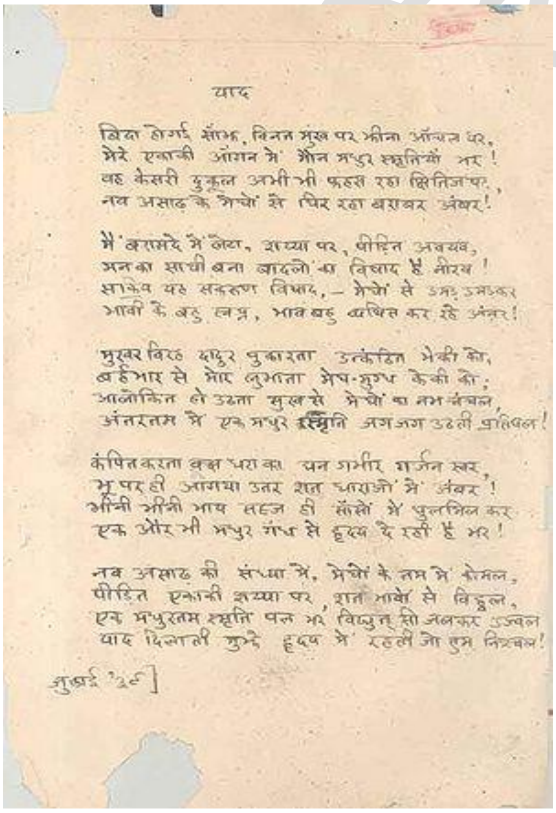

याद

बिदा हो गई साँझ, विनत मुख पर झीना आँचल धर,
मेरे एकाकी आँगन में मौन मधुर स्मृतियाँ भर!
वह केसरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिज पर,
नव असाढ़ के मेघों से घिर रहा बराबर अंबर!

मैं बरामदे में लेटा, शय्या पर, पीड़ित अवयव,
मन का साथी बना बादलों का विषाद है नीरव!
सक्रिय यह सकरुण विषाद,— मेघों से उमड़ उमड़ कर
भावी के बहु स्वप्न, भाव बहु व्यथित कर रहे अंतर!

मुखर विरह दादुर पुकारता उत्कंठित भेकी को,
बर्हभार से मोर लुभाता मेघ-मुग्ध केकी को;
आलोकित हो उठता सुख से मेघों का नभ चंचल,
अंतरतम में एक मधुर स्मृति जग जग उठती प्रतिपल!

कंपित करता वक्ष धरा का घन गभीर गर्जन स्वर,
भू पर ही आ गया उतर शत धाराओं में अंबर!
भीनी भीनी भाप सहज ही साँसों में घुलमिल कर
एक और भी मधुर गंध से हृदय दे रही है भर!

नव असाढ़ की संध्या में, मेघों के तम में कोमल,
पीड़ित एकाकी शय्या पर, शत भावों से विह्वल,
एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत सी जलकर उज्वल
याद दिलाती मुझे हृदय में रहती जो तुम निश्चल!

जुलाई '३९]

सुमित्रानन्दन पंत हस्तलिपि 'याद'

'लोकायतन' कवि सुमित्रानन्दन पन्त का महाकाव्य है। कवि की विचारधारा और लोक-जीवन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता इस रचना में अभिव्यक्त हुई है। इस पर कवि को 'सोवियत रूस' तथा उत्तर प्रदेश शासन से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। पंत जी को अपने माता-पिता के प्रति असीम-सम्मान था। इसलिए उन्होंने अपने दो महाकाव्यों में से एक महाकाव्य 'लोकायतन' अपने पूज्य पिता को और दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' अपनी स्नेहमयी माता को, जो इन्हें जन्म देते ही स्वर्ग सिधार गईं, समर्पित किया है।[3] अपनी माँ सरस्वती देवी[4] को स्मरण करते हुए इन्होंने अपना दूसरा महाकाव्य 'सत्यकाम' जिन शब्दों के साथ उन्हें समर्पित किया है, वे द्रष्टव्य हैं-

मुझे छोड़ अनगढ़ जग में तुम हुई अगोचर,
भाव-देह धर लौटीं माँ की ममता से भर !
वीणा ले कर में, शोभित प्रेरणा-हंस पर,
साध चेतना-तंत्रि रसौ वै सः झंकृत कर
खोल हृदय में भावी के सौन्दर्य दिगंतर !

काव्य-संग्रह

'वीणा', 'पल्लव' तथा 'गुंजन' छायावादी शैली में सौन्दर्य और प्रेम की प्रस्तुति है। 'युगान्त', युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में पन्तजी के प्रगतिवादी और यथार्थपरक भावों का प्रकाशन हुआ है। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'अतिमा', तथा 'रजत-रश्मि' संग्रहों में अरविन्द-दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनके अतिरिक्त 'कला और बूढ़ा चाँद' तथा 'चिदम्बरा' भी आपकी सम्मानित रचनाएँ हैं। पन्तजी की अन्तर्दृष्टि तथा संवेदनशीलता ने जहाँ उनके भाव-पक्ष को गहराई और विविधता प्रदान की हैं, वहीं उनकी कल्पना-प्रबलता और अभिव्यक्ति-कौशल ने उनके कला-पक्ष को सँवारा है।

रचनाएँ

सुमित्रानंदन पंत

चिदंबरा 1958 का प्रकाशन है। इसमें युगवाणी (1937-38) से अतिमा (1948) तक कवि की 10 कृतियों से चुनी हुई 196 कविताएं संकलित हैं। एक लंबी आत्मकथात्मक कविता आत्मिका भी इसमें सम्मिलित है, जो वाणी (1957) से ली गई है। चिदंबरा पंत की काव्य चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायक है। प्रमुख रचनाएं इस प्रकार है:-

कविताएं

- वीणा (1919)
- ग्रंथि (1920)
- पल्लव (1926)
- गुंजन (1932)
- युगांत (1937)
- युगवाणी (1938)
- ग्राम्या (1940)
- स्वर्णकिरण (1947)

कविताएं

- स्वर्णधूलि (1947)
- उत्तरा (1949)
- युगपथ (1949)
- चिदंबरा (1958)
- कला और बूढ़ा चाँद (1959)
- लोकायतन (1964)
- गीतहंस (1969)।

कहानियाँ

- पाँच कहानियाँ (1938)

उपन्यास

- हार (1960),

आत्मकथात्मक संस्मरण

- साठ वर्ष : एक रेखांकन (1963)।

समालोचना

उनका रचा हुआ संपूर्ण साहित्य 'सत्यम शिवम सुंदरम' के संपूर्ण आदर्शों से प्रभावित होते हुए भी समय के साथ निरंतर बदलता रहा है। जहां प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति और सौंदर्य के रमणीय चित्र मिलते हैं वहीं दूसरे चरण की कविताओं

में छायावाद की सूक्ष्म कल्पनाओं व कोमल भावनाओं के और अंतिम चरण की कविताओं में प्रगतिवाद और विचारशीलता के। उनकी सबसे बाद की कविताएं अरविंद दर्शन और मानव कल्याण की भावनाओं सो ओतप्रोत हैं।

साहित्य सृजन

सात वर्ष की उम्र में, जब वे चौथी कक्षा में ही पढ़ रहे थे, उन्होंने कविता लिखना शुरु कर दिया था। १९१८ के आसपास तक वे हिंदी के नवीन धारा के प्रवर्तक कवि के रूप में पहचाने जाने लगे थे। इस दौर की उनकी कविताएं वीणा में संकलित हैं। १९२६-२७ में उनका प्रसिद्ध काव्य संकलन 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। कुछ समय पश्चात वे अपने भाई देवीदत्त के साथ अल्मोडा आ गये। इसी दौरान वे मार्क्स व फ्रायड की विचारधारा के प्रभाव में आये। १९३८ में उन्होंने "" नामक प्रगतिशील मासिक पत्र निकाला। शमशेर, रघुपति सहाय आदि के साथ वे प्रगतिशील लेखक संघ से भी जुडे रहे। वे १९५५ से १९६२ तक आकाशवाणी से जुडे रहे और मुख्य-निर्माता के पद पर कार्य किया। उनकी विचारधारा योगी अरविन्द से प्रभावित भी हुई जो बाद की उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। "वीणा" तथा "पल्लव" में संकलित उनके छोटे गीत विराट व्यापक सौंदर्य तथा पवित्रता से साक्षात्कार कराते हैं। "युगांत" की रचनाओं के लेखन तक वे प्रगतिशील विचारधारा से जुडे प्रतीत होते हैं। "युगांत" से "ग्राम्या" तक उनकी काव्ययात्रा प्रगतिवाद के निश्चित व प्रखरस्वरोंकी उदघोषणा करती है। उनकी साहित्यिक यात्रा के तीन प्रमुख पडाव हैं – प्रथम में वे छायावादी हैं, दूसरे में समाजवादी आदर्शों से प्रेरित प्रगतिवादी तथा तीसरे में अरविन्द दर्शन से प्रभावित अध्यात्मवादी। १९०७ से १९१८ के काल को स्वयं उन्होंने अपने कवि-जीवन का प्रथम चरण माना है। इस काल की कविताएँ वीणा में संकलित हैं। सन् १९२२ में उच्छवास और १९२८ में पल्लव का प्रकाशन हुआ। सुमित्रानंदन पंत की कुछ अन्य काव्य कृतियाँ हैं - ग्रन्थि, गुंजन, ग्राम्या, युगांत, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन, चिदंबरा, सत्यकाम आदि। उनके जीवनकाल में उनकी २८ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें कविताएं, पद्य-नाटक और निबंध शामिल हैं। पंत अपने विस्तृत वाङमय में एक विचारक, दार्शनिक और मानवतावादी के रूप में सामने आते हैं किंतु उनकी सबसे कलात्मक कविताएं 'पल्लव' में संकलित हैं, जो १९१८ से १९२५ तक लिखी गई ३२ कविताओं का संग्रह है।[3]

विचारधारा

उनका संपूर्ण साहित्य 'सत्यम शिवम सुंदरम' के आदर्शों से प्रभावित होते हुए भी समय के साथ निरंतर बदलता रहा है। जहां प्रारंभिक कविताओं में प्रकृति और सौंदर्य के रमणीय चित्र मिलते हैं वहीं दूसरे चरण की कविताओं में छायावाद की सूक्ष्म कल्पनाओं व कोमल भावनाओं के और अंतिम चरण की कविताओं में प्रगतिवाद और विचारशीलता के। उनकी सबसे बाद की कविताएं अरविंद दर्शन और मानव कल्याण की भावनाओं से ओतप्रोत हैं।[4] पंत परंपरावादी आलोचकों और प्रगतिवादी व प्रयोगवादी आलोचकों के सामने कभी नहीं झुके। उन्होंने अपनी कविताओं में पूर्व मान्यताओं को नकारा नहीं। उन्होंने अपने ऊपर लगने वाले आरोपों को 'नम्र अवज्ञा' कविता के माध्यम से खारिज किया। वह कहते थे 'गा कोकिला संदेश सनातन, मानव का परिचय मानवपन।'

पुरस्कार व सम्मान

हिंदी साहित्य सेवा के लिए उन्हें पद्मभूषण(1961), ज्ञानपीठ(1968)[5], साहित्य अकादमी[6], तथा सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार[7] जैसे उच्च श्रेणी के सम्मानों से अलंकृत किया गया। सुमित्रानंदन पंत के नाम पर कौशानी में उनके पुराने घर को जिसमें वे बचपन में रहा करते थे, सुमित्रानंदन पंत वीथिका के नाम से एक संग्रहालय के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। इसमें उनके व्यक्तिगत प्रयोग की वस्तुओं जैसे कपड़ों, कविताओं की मूल पांडुलिपियों, छायाचित्रों, पत्रों और पुरस्कारों को प्रदर्शित किया गया है।[8] इसमें एक पुस्तकालय भी है, जिसमें उनकी व्यक्तिगत तथा उनसे संबंधित पुस्तकों का संग्रह है।[9][10] उनका देहांत १९७७ में हुआ।

स्मृति विशेष

उत्तराखंड में कुमायुं की पहाड़ियों पर बसे कउसानी गांव में, जहाँ उनका बचपन बीता था, वहां का उनका घर आज 'सुमित्रा नंदन पंत साहित्यिक वीथिका' नामक संग्रहालय बन चुका है। इस में उनके कपड़े, चश्मा, कलम आदि व्यक्तिगत वस्तुएं सुरक्षित रखी गई हैं। संग्रहालय में उनको मिले ज्ञानपीठ पुरस्कार का प्रशस्तिपत्र, हिंदी साहित्य संस्थान द्वारा मिला साहित्य वाचस्पति का प्रशस्तिपत्र भी मौजूद है। साथ ही उनकी रचनाएं लोकायतन, आस्था, रूपम आदि कविता संग्रह की पांडुलिपियां भी सुरक्षित रखी हैं। कालाकांकर के कुंवर सुरेश सिंह और हरिवंश राय बच्चन से किये गये उनके पत्र व्यवहार की प्रतिलिपियां भी यहां मौजूद हैं।

संग्रहालय में उनकी स्मृति में प्रत्येक वर्ष पंत व्याख्यान माला का आयोजन होता है। यहाँ से 'सुमित्रानंदन पंत व्यक्तित्व और कृतित्व' नामक पुस्तक भी प्रकाशित की गई है। उनके नाम पर इलाहाबाद शहर में स्थित हाथी पार्क का नाम सुमित्रा नंदन पंत उद्यान कर दिया गया है।

''चिदंबरा मेरी काव्यचेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायिका है, उसमें युगवाणी से लेकर अतिमा तक की रचनाओं का संचयन है-सन् '37 से 57 तक प्रायः बीस वर्षों की विकास-श्रेणी का विस्तार। ''चिदंबरा की पृथु-आकृति में मेरी भौतिक, सामाजिक, मानसिक, आध्यात्मिक संचरणों से प्रेरित कृतियों को एक स्थान पर एकत्रित देखकर पाठकों को उनके भीतर व्याप्त एकता के सूत्रों को समझने में अधिक सहायता मिल सकेगी।

इसमें मैंने अपनी सीमाओं के भीतर, अपने युग के बहिरंतर के जीवन तथा चैतन्य को, नवीन मानवता की कल्पना से मण्डित कर, वाणी देने का प्रयत्न किया है। मेरी दृष्टि में युगवाणी से लेकर वाणी तक मेरी काव्य-चेतना का एक ही संचरण है, जिसके भीतर भौतिक और आध्यात्मिक चरणों की सार्थकता, द्विपद मानव की प्रकृति के लिए सदैव ही अनिवार्य रुप से रहेगी। ''पाठक देखेंगे कि (इन रचनाओं में) मैंने भौतिक-आध्यात्मिक, दोनों दर्शनों से जीवनोपयोगी तत्वों को लेकर, जड़-चेतन सम्बन्धी एकांगी दृष्टिकोण का परित्याग कर, व्यापक सक्रिय सामंजस्य के धरातल पर, नवीन लोक जीवन के रूप में, भरे-पूरे मनुष्यत्व अथवा मानवता का निर्माण करने का प्रयत्न किया है, जो इस युग की सर्वोपरि आवश्यकता है?

.

डॉ. सुनील कुमार शर्मा

२. रामधारी सिंह 'दिनकर'

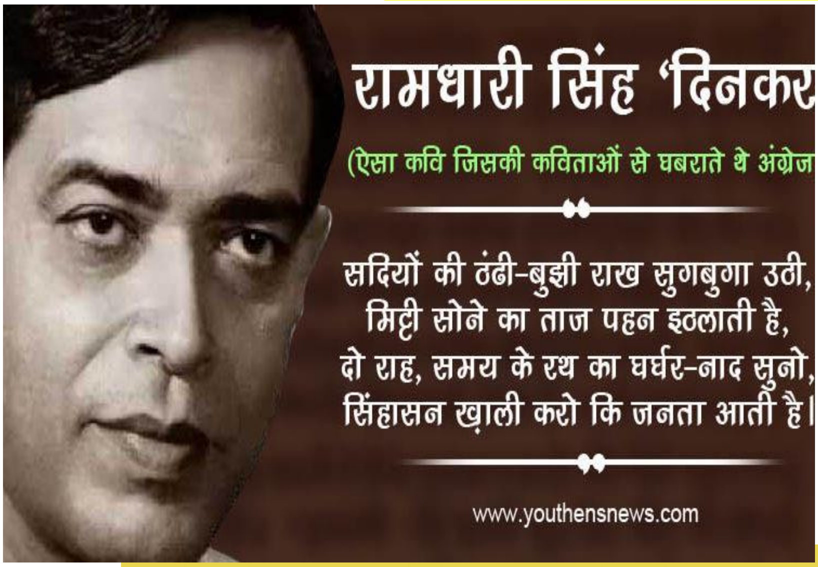

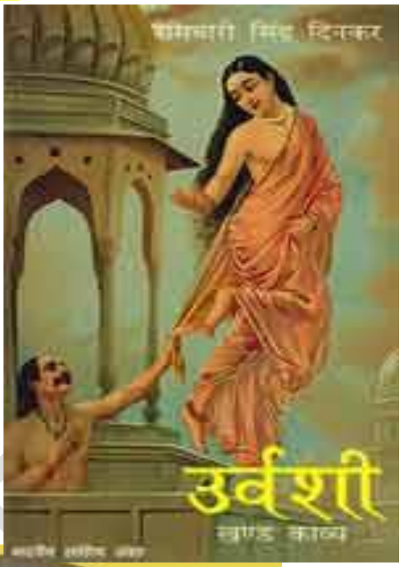

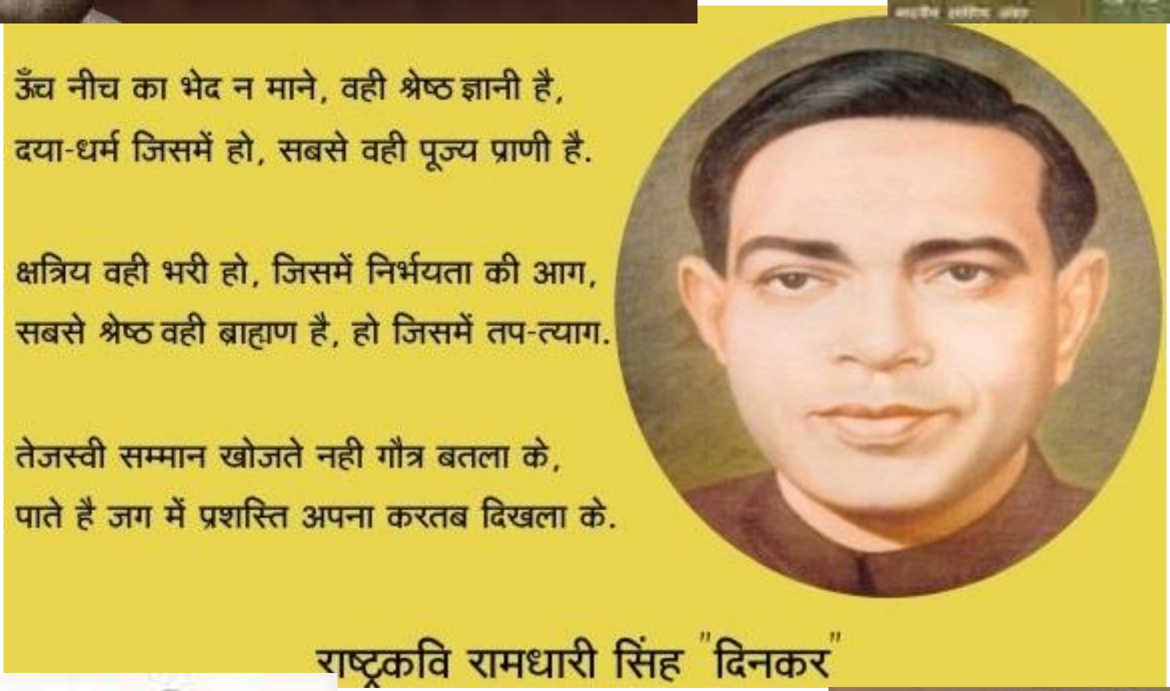

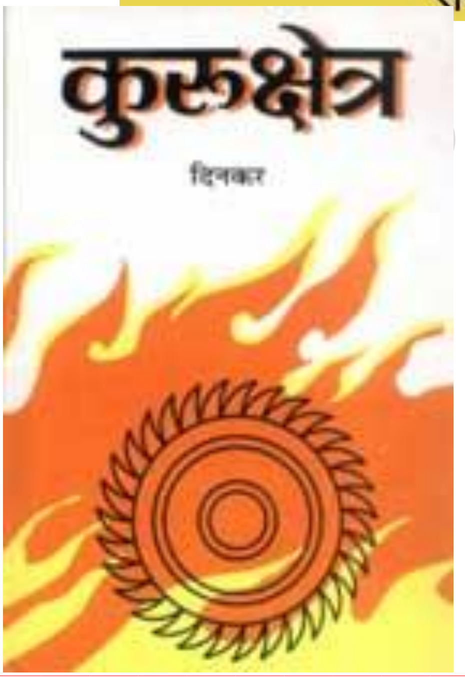

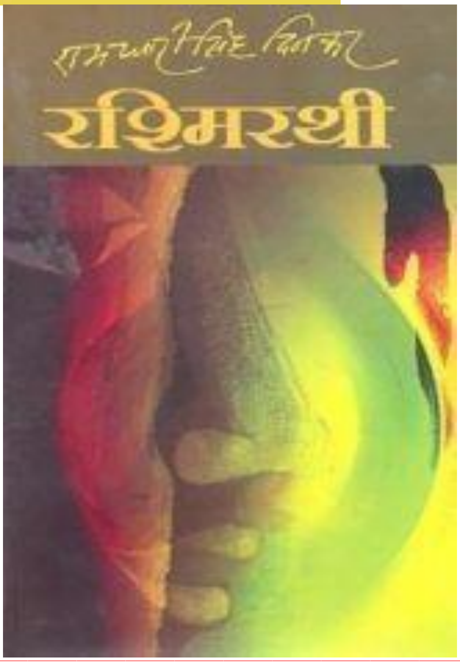

(रामधारी सिंह दिनकर से अनुप्रेषित)

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर'

उपनाम:	'दिनकर'
जन्म:	23 सितंबर, 1908 सिमरिया घाट बेगूसराय जिला, बिहार, भारत
मृत्यु:	24 अप्रैल, 1974 मद्रास, तमिलनाडु, भारत
कार्यक्षेत्र:	कवि, लेखक
राष्ट्रीयता:	भारतीय
भाषा:	हिन्दी
काल:	आधुनिक काल
विधा:	गद्य और पद्य
विषय:	कविता, खंडकाव्य, निबंध, समीक्षा
साहित्यिक आन्दोलन:	राष्ट्रवाद, प्रगतिवाद
प्रमुख कृति(याँ):	कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, उर्वशी, हुंकार, संस्कृति के चार अध्याय, परशुराम की प्रतीक्षा, हाहाकार
हस्ताक्षर:	

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित

रामधारी सिंह 'दिनकर' (२३ सितंबर १९०८- २४ अप्रैल १९७४) हिन्दी के एक प्रमुख लेखक, कवि व निबन्धकार थे।[1][2] वे आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हैं। बिहार प्रान्त के बेगुसराय जिले का सिमरिया घाट उनकी जन्मस्थली है। उन्होंने इतिहास, दर्शनशास्त्र और राजनीति विज्ञान की पढ़ाई पटना विश्वविद्यालय से की। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था।

'दिनकर' स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रकवि के नाम से जाने गये। वे छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओ में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवृत्तियों का चरम उत्कर्ष हमें उनकी कुरुक्षेत्र और उर्वशी नामक कृतियों में मिलता है।

डॉ. सुनील कुमार परीट

उर्वशी को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार जबकि कुरुक्षेत्र को विश्व के १०० सर्वश्रेष्ठ काव्यों में ७४वाँ स्थान दिया गया।

जीवन परिचय

दिनकर का जन्म २३ सितंबर १९०८ को सिमरिया, मुंगेर, बिहार में हुआ था। पटना विश्वविद्यालय से बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक विद्यालय में अध्यापक हो गये। १९३४ से १९४७ तक बिहार सरकार की सेवा में सब-रजिस्टार और प्रचार विभाग के उपनिदेशक पदों पर कार्य किया। १९५० से १९५२ तक मुजफ्फरपुर कालेज में हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहे, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद पर कार्य किया और उसके बाद भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार बने। उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। उनकी पुस्तक *संस्कृति के चार अध्याय* [3] के लिये साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा *उर्वशी* के लिये भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। अपनी लेखनी के माध्यम से वह सदा अमर रहेंगे।

द्वापर युग की ऐतिहासिक घटना महाभारत पर आधारित उनके प्रबन्ध काव्य कुरुक्षेत्र को विश्व के १०० सर्वश्रेष्ठ काव्यों में ७४वाँ स्थान दिया गया।[4]

शिक्षा

संस्कृत के एक पंडित के पास अपनी प्रारंभिक शिक्षा प्रारंभ करते हुए दिनकर जी ने गाँव के 'प्राथमिक विद्यालय' से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की एवं निकटवर्ती बोरो नामक ग्राम में 'राष्ट्रीय मिडिल स्कूल' जो सरकारी शिक्षा व्यवस्था के विरोध में खोला गया था, में प्रवेश प्राप्त किया। यहीं से इनके मनोमस्तिष्क में राष्ट्रीयता की भावना का विकास होने लगा था। हाई स्कूल की शिक्षा इन्होंने 'मोकामाघाट हाई स्कूल' से प्राप्त की। इसी बीच इनका विवाह भी हो चुका था तथा ये एक पुत्र के पिता भी बन चुके थे।[1] 1928 में मैट्रिक के बाद दिनकर ने पटना विश्वविद्यालय से 1932 में इतिहास में बी. ए. ऑनर्स किया।

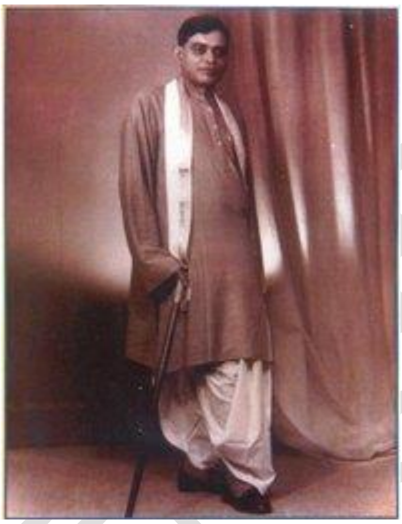

रामधारी सिंह 'दिनकर'

पटना विश्वविद्यालय से बी. ए. ऑनर्स करने के बाद अगले ही वर्ष एक स्कूल में यह 'प्रधानाध्यापक' नियुक्त हुए, पर 1934 में बिहार सरकार के अधीन इन्होंने 'सब-रजिस्ट्रार' का पद स्वीकार कर लिया। लगभग नौ वर्षों तक वह इस पद पर रहे और उनका समूचा कार्यकाल बिहार के देहातों में बीता तथा जीवन का जो पीड़ित रूप उन्होंने बचपन से देखा था, उसका और तीखा रूप उनके मन को मथ गया।

कार्यक्षेत्र

1947 में देश स्वाधीन हुआ और वह बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी के 'प्राध्यापक व विभागाध्यक्ष' नियुक्त होकर मुज़फ़्फ़रपुर पहुँचे। 1952 में जब भारत की प्रथम संसद का निर्माण हुआ, तो उन्हें राज्यसभा का सदस्य चुना गया और वह दिल्ली आ गए। दिनकर 12 वर्ष तक संसद-सदस्य रहे, बाद में उन्हें सन् 1964 से 1965 ई. तक 'भागलपुर विश्वविद्यालय' का कुलपति नियुक्त किया गया। लेकिन अगले ही वर्ष भारत सरकार ने उन्हें 1965 से 1971 ई. तक अपना 'हिन्दी सलाहकार' नियुक्त किया और वह फिर दिल्ली लौट आए। फिर तो ज्वार उमरा और रेणुका, हुंकार, रसवंती और द्वंदगीत रचे गए। रेणुका और हुंकार की कुछ रचनाऐं यहाँ-वहाँ प्रकाश में आईं और अंग्रेज प्रशासकों को समझते देर न लगी कि वे एक ग़लत आदमी को अपने तंत्र का अंग बना बैठे हैं और दिनकर की फ़ाइल तैयार होने लगी, बात-बात पर क़ैफ़ियत तलब होती और चेतावनियाँ मिला करतीं। 4 वर्ष में 22 बार उनका तबादला किया गया।

विशिष्ट महत्त्व

दिनकर जी की प्राय: 50 कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। हिन्दी काव्य छायावाद का प्रतिलोम है, यह कहना तो शायद उचित नहीं होगा पर इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी काव्य जगत पर छाये छायावादी कुहासे को काटने वाली शक्तियों में दिनकर की प्रवाहमयी, ओजस्विनी कविता के स्थान का विशिष्ट महत्त्व है। दिनकर छायावादोत्तर काल के कवि हैं, अत: छायावाद की उपलब्धियाँ उन्हें विरासत में मिलीं पर उनके काव्योत्कर्ष का काल छायावाद की रंगभरी सन्ध्या का समय था।

द्विवेदी युगीन स्पष्टता

कविता के भाव छायावाद के उत्तरकाल के निष्प्रभ शोभादीपों से सजे-सजाये कक्ष से ऊब चुके थे, बाहर की मुक्त वायु और प्राकृतिक प्रकाश और चाहतेताप का संस्पर्श थे। वे छायावाद के कल्पनाजन्य निर्विकार मानव के खोखलेपन से परिचित हो चुके थे, उस पार की दुनिया के अलभ्य सौन्दर्य का यथेष्ट स्वप्न दर्शन कर चुके थे, चमचमाते प्रदेश में संवेदना की मरीचिका के पीछे दौड़ते थक चुके थे, उस लाक्षणिक और अस्वाभिक भाषा शैली से उनका जी भर चुका था, जो उन्हें बार-बार अर्थ की गहराइयों की झलक सी दिखाकर छल चुकी थी। उन्हें अपेक्षा थी भाषा में द्विवेदी युगीन स्पष्टता की, पर उसकी शुष्कता की नहीं, व्यक्ति और परिवेश के वास्तविक संस्पर्श की, सहजता और शक्ति की। 'बच्चन' की कविता में उन्हें व्यक्ति का संस्पर्श मिला, दिनकर के काव्य में उन्हें जीवन समाज और परिचित परिवेश का संस्पर्श मिला। दिनकर का समाज व्यक्तियों का समूह था, केवल एक राजनीतिक तथ्य नहीं था।

द्विवेदी युग और छायावाद

आरम्भ में दिनकर ने छायावादी रंग में कुछ कविताएँ लिखीं, पर जैसे-जैसे वे अपने स्वर से स्वयं परिचित होते गये, अपनी काव्यानुभूति पर ही अपनी कविता को आधारित करने का आत्म विश्वास उनमें बढ़ता गया, वैसे ही वैसे उनकी कविता छायावाद के प्रभाव से मुक्ति पाती गयी पर छायावाद से उन्हें जो कुछ विरासत में मिला था, जिसे वे मनोनुकूल पाकर अपना चुके थे, वह तो उनका हो ही गया।

फणीश्वरनाथ रेणु (सबसे बाएँ) के साथ रामधारी सिंह 'दिनकर' (बोलते हुए)

उनकी काव्यधारा जिन दो कुलों के बीच में प्रवाहित हुई, उनमें से एक छायावाद था। भूमि का ढलान दूसरे कुल की ओर था, पर धारा को आगे बढ़ाने में दोनों का अस्तित्व अपेक्षित और अनिवार्य था। दिनकर अपने को द्विवेदी युगीन और छायावादी काव्य पद्धतियों का वारिस मानते थे। उन्हीं के शब्दों में "पन्त के सपने हमारे हाथ में आकर उतने वायवीय नहीं रहे, जितने कि वे छायावादकाल में थे," किन्तु द्विवेदी युगीन अभिव्यक्ति की शुभ्रता हम लोगों के पास आते-जाते कुछ रंगीन अवश्य हो गयी। अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता की नयी विरासत हमें आप से आप प्राप्त हो गयी।

आत्म परीक्षण

दिनकर ने अपने कृतित्व के विषय में एकाधिक स्थानों पर विचार किया है। सम्भवत: हिन्दी का कोई कवि अपने ही कवि कर्म के विषय में दिनकर से अधिक चिन्तन व आलोचना न करता होगा। वह दिनकर की आत्मरति का नहीं, अपने कवि कर्म के प्रति उनके दायित्व के बोध का प्रमाण है कि वे समय-समय पर इस प्रकार आत्म परीक्षण करते रहे। इसी कारण अधिकतर अपने बारे में जो कहते थे, वह सही होता था। उनकी कविता प्राय: छायावाद की अपेक्षा द्विवेदी युगीन स्पष्टता, प्रसाद गुण के प्रति आस्था और मोह, अतीत के प्रति आदर प्रदर्शन की प्रवृत्ति, अनेक बिन्दुओं पर दिनकर की कविता द्विवेदी युगीन काव्यधारा का आधुनिक ओजस्वी, प्रगतिशील संस्करण जान पड़ती है। उनका स्वर भले ही सर्वदा, सर्वथा 'हुंकार' न बन पाता हो, 'गुंजन' तो कभी भी नहीं बनता।

सामाजिक चेतना के चारण

वे अहिन्दीभाषी जनता में भी बहुत लोकप्रिय थे क्योंकि उनका हिन्दी प्रेम दूसरों की अपनी मातृभाषा के प्रति श्रद्धा और प्रेम का विरोधी नहीं, बल्कि प्रेरक था। -**हज़ारी प्रसाद द्विवेदी**

दिनकर जी ने श्रमसाध्य जीवन जिया। उनकी साहित्य साधना अपूर्व थी। कुछ समय पहले मुझे एक सज्जन ने कलकत्ता से पत्र लिखा कि दिनकर को ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलना कितना उपयुक्त है ? मैंने उन्हें उत्तर में लिखा था कि यदि चार ज्ञानपीठ पुरस्कार उन्हें मिलते, तो उनका सम्मान होता- गद्य, पद्य, भाषणों और हिन्दी प्रचार के लिए। -**हरिवंशराय बच्चन**

उनकी राष्ट्रीयता चेतना और व्यापकता सांस्कृतिक दृष्टि, उनकी वाणी का ओज और काव्यभाषा के तत्वों पर बल, उनका सात्त्विक मूल्यों का आग्रह उन्हें पारम्परिक रीति से जोड़े रखता है। -**अज्ञेय**

हमारे क्रान्ति-युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय दिनकर कर रहा है। क्रान्तिवादी को जिन-जिन हृदय-मंथनों से गुजरना होता है, दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है। -**रामवृक्ष बेनीपुरी**

दिनकर जी सचमुच ही अपने समय के सूर्य की तरह तपे। मैंने स्वयं उस सूर्य का मध्याह्न भी देखा है और अस्ताचल भी। वे सौन्दर्य के उपासक और प्रेम के पुजारी भी थे। उन्होंने 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक विशाल ग्रन्थ लिखा है, जिसे पं. जवाहर लाल नेहरू ने उसकी भूमिका लिखकर गौरवन्वित किया था। दिनकर बीसवीं शताब्दी के मध्य की एक तेजस्वी विभूति थे। -**नामवर सिंह**[3]

दिनकर का नाम प्रगतिवादी कवियों में लिया जाता था, पर अब शायद साम्यवादी विचारक उन्हें उस विशिष्ट पंक्ति में स्थान देने के लिए तैयार न हों, क्योंकि आज का दिनकर "अरुण विश्व की काली जय हो! लाल सितारों वाली जय हो"? के लेखक से बहुत दूर जान पड़ता है। जो भी हो, साम्यवादी विचारक आज के दिनकर को किसी भी पंक्ति में क्यों न स्थान देना चाहे, इससे इंकार किया ही नहीं जा सकता कि जैसे बच्चन मूलत: एकांत व्यक्तिवादी कवि हैं, वैसे ही दिनकर मूलत: सामाजिक चेतना के चारण हैं।

रामधारी सिंह दिनकर

साहित्यिक जीवन

उनके कवि जीवन का आरम्भ 1935 से हुआ, जब छायावाद के कुहासे को चीरती हुई 'रेणुका' प्रकाशित हुई और हिन्दी जगत एक बिल्कुल नई शैली, नई शक्ति, नई भाषा की गूंज से भर उठा। तीन वर्ष बाद जब 'हुंकार' प्रकाशित हुई, तो देश के युवा वर्ग ने कवि और उसकी ओजमयी कविताओं को कंठहार बना लिया। सभी के लिए वह अब राष्ट्रीयता, विद्रोह और क्रांति के कवि थे। 'कुरुक्षेत्र' द्वितीय महायुद्ध के समय की रचना है, किंतु उसकी मूल प्रेरणा युद्ध नहीं, देशभक्त युवा मानस के हिंसा-अहिंसा के द्वंद से उपजी थी।

आत्म मंथन के युग की रचनाएँ

दिनकर के प्रथम तीन काव्य-संग्रह प्रमुख हैं– 'रेणुका' (1935 ई.), 'हुंकार' (1938 ई.) और 'रसवन्ती' (1939 ई.) उनके आरम्भिक आत्म मंथन के युग की रचनाएँ हैं। इनमें दिनकर का कवि अपने व्यक्ति परक, सौन्दर्यान्वेषी मन और सामाजिक चेतना से उत्तम बुद्धि के परस्पर संघर्ष का तटस्थ द्रष्टा नहीं, दोनों के बीच से कोई राह निकालने की चेष्टा में संलग्न साधक के रूप में मिलता है।

रेणुका

रेणुका में अतीत के गौरव के प्रति कवि का सहज आदर और आकर्षण परिलक्षित होता है। पर साथ ही वर्तमान परिवेश की नीरसता से त्रस्त मन की वेदना का परिचय भी मिलता है।

हुंकार

हुंकार में कवि अतीत के गौरव-गान की अपेक्षा वर्तमान दैत्य के प्रति आक्रोश प्रदर्शन की ओर अधिक उन्मुख जान पड़ता है।

रसवन्ती

रसवन्ती में कवि की सौन्दर्यान्वेषी वृत्ति काव्यमयी हो जाती है पर यह अन्धेरे में ध्येय सौन्दर्य का अन्वेषण नहीं, उजाले में ज्ञेय सौन्दर्य का आराधन है।

सामधेनी (1947 ई.)

सामधेनी में दिनकर की सामाजिक चेतना स्वदेश और परिचित परिवेश की परिधि से बढ़कर विश्व वेदना का अनुभव करती जान पड़ती है। कवि के स्वर का ओज नये वेग से नये शिखर तक पहुँच जाता है। 1955 में 'नीलकुसुम' दिनकर के काव्य में एक मोड़ बनकर आया। यहाँ वह काव्यात्मक प्रयोगशीलता के प्रति आस्थावान है। स्वयं प्रयोगशील कवियों को अजमाल पहनाने और राह पर फूल बिछाने की आकांक्षा उसे विह्वल कर देती है। नवीनतम काव्यधारा से सम्बन्ध स्थापित करने की कवि की इच्छा तो स्पष्ट हो जाती है, पर उसका कृतित्व साथ देता नहीं जान पड़ता है। अभी तक उनका काव्य आवेश का काव्य था, नीलकुसुम ने नियंत्रण और गहराइयों में

पैठने की प्रवृत्ति की सूचना दी। 6 वर्ष बाद [उर्वशी](#) प्रकाशित हुई, हिन्दी साहित्य संसार में एक ओर उसकी कटु आलोचना और दूसरी ओर मुक्तकंठ से प्रशंसा हुई। धीरे-धीरे स्थिति सामान्य हुई इस काव्य-नाटक को दिनकर की 'कवि-प्रतिभा का चमत्कार' माना गया। कवि ने इस वैदिक मिथक के माध्यम से [देवता](#) व मनुष्य, स्वर्ग व पृथ्वी, अप्सरा व लक्ष्मी और अध्यात्म के संबंधों का अद्भुत विश्लेषण किया है।

काव्य रचना

इन [मुक्तक](#) काव्य संग्रहों के अतिरिक्त दिनकर ने अनेक [प्रबन्ध काव्यों](#) की रचना भी की है, जिनमें '[कुरुक्षेत्र](#)' (1946 ई.), '[रश्मिरथी](#)' (1952 ई.) तथा '[उर्वशी](#)' (1961 ई.) प्रमुख हैं। 'कुरुक्षेत्र' में [महाभारत](#) के शान्ति पर्व के मूल कथानक का ढाँचा लेकर दिनकर ने युद्ध और शान्ति के विशद, गम्भीर और महत्त्वपूर्ण विषय पर अपने विचार [भीष्म](#) और [युधिष्ठर](#) के संलाप के रूप में प्रस्तुत किये हैं। दिनकर के काव्य में विचार तत्त्व इस तरह उभरकर सामने पहले कभी नहीं आया था। 'कुरुक्षेत्र' के बाद उनके नवीनतम काव्य 'उर्वशी' में फिर हमें विचार तत्त्व की प्रधानता मिलती है। साहसपूर्वक गांधीवादी अहिंसा की आलोचना करने वाले 'कुरुक्षेत्र' का हिन्दी जगत में यथेष्ट आदर हुआ। 'उर्वशी' जिसे कवि ने स्वयं 'कामाध्याय' की उपाधि प्रदान की है– ’दिनकर’ की कविता को एक नये शिखर पर पहुँचा दिया है। भले ही सर्वोच्च शिखर न हो, दिनकर के कृतित्व की गिरिश्रेणी का एक सर्वथा नवीन शिखर तो है ही। दिनकर ने अनेक पुस्तकों का सम्पादन भी किया है, जिनमें 'अनुग्रह अभिनन्दन ग्रन्थ' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

[Skip to content](#)

- [Home](#)
- [Swantah Sukhaya (for myself)](#)

सिंहासन खाली करो कि जनता आती है: रामधारी सिंह “दिनकर”

अब एक कविता हिंदी की भी| दिनकर ने ये कविता हमारे पहले गणतंत्र दिवस के अवसर पर लिखी थी| फिर ये १९७४ के संपूर्ण-क्रांति का भी नारा बनी|चलिए आज फिर दोहराते हैं:

सदियों की ठंढी-बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है;
दो राह,समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।
जनता?हां,मिट्टी की अबोध मूरतें वही,
जाड़े-पाले की कसक सदा सहनेवाली,
जब अंग-अंग में लगे सांप हो चुस रहे
तब भी न कभी मुंह खोल दर्द कहनेवाली।
जनता?हां,लंबी – बडी जीभ की वही कसम,
“जनता,सचमुच ही, बडी वेदना सहती है।”
“सो ठीक,मगर,आखिर,इस पर जनमत क्या है?”
‘है प्रश्न गूढ़ जनता इस पर क्या कहती है?”
मानो,जनता ही फूल जिसे अहसास नहीं,
जब चाहो तभी उतार सजा लो दोनों में;
अथवा कोई दूधमुंही जिसे बहलाने के
जन्तर-मन्तर सीमित हों चार खिलौनों में।
लेकिन होता भूडोल, बवंडर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढाती है;
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।
हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती,
सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है,
जनता की रोके राह,समय में ताव कहां?
वह जिधर चाहती,काल उधर ही मुड़ता है।
अब्दों, शताब्दियों, सहस्त्राब्द का अंधकार
बीता;गवाक्ष अंबर के दहके जाते हैं;
यह और नहीं कोई,जनता के स्वप्न अजय
चीरते तिमिर का वक्ष उमड़ते जाते हैं।

सब से विराट जनतंत्र जगत का आ पहुंचा,
तैंतीस कोटि-हित सिंहासन तय करो
अभिषेक आज राजा का नहीं,प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो।
आरती लिये तू किसे ढूंढता है मूरख,
मन्दिरों, राजप्रासादों में, तहखानों में?

देवता कहीं सड़कों पर गिट्टी तोड़ रहे,
देवता मिलेंगे खेतों में, खलिहानों में।
फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं,
धूसरता सोने से श्रृंगार सजाती है;
दो राह,समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है

प्रमुख कृतियाँ

उन्होंने सामाजिक और आर्थिक समानता और शोषण के खिलाफ कविताओं की रचना की। एक प्रगतिवादी और मानववादी कवि के रूप में उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को ओजस्वी और प्रखर शब्दों का तानाबाना दिया। उनकी महान रचनाओं में रश्मिरथी और परशुराम की प्रतीक्षा शामिल है। उर्वशी को छोड़कर दिनकर की अधिकतर रचनाएँ वीर रस से ओतप्रोत है। भूषण के बाद उन्हें वीर रस का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है।

ज्ञानपीठ से सम्मानित उनकी रचना उर्वशी की कहानी मानवीय प्रेम, वासना और सम्बन्धों के इर्द-गिर्द धूमती है। उर्वशी स्वर्ग परित्यक्ता एक अप्सरा की कहानी है। वहीं, कुरुक्षेत्र, महाभारत के शान्ति-पर्व का कवितारूप है। यह दूसरे विश्वयुद्ध के बाद लिखी गयी रचना है। वहीं सामधेनी की रचना कवि के सामाजिक चिन्तन के अनुरुप हुई है। संस्कृति के चार अध्याय में दिनकरजी ने कहा कि सांस्कृतिक, भाषाई और क्षेत्रीय विविधताओं के बावजूद भारत एक देश है। क्योंकि सारी विविधताओं के बाद भी, हमारी सोच एक जैसी है।

विस्तृत दिनकर साहित्य सूची नीचे दी गयी है-

काव्य

1. बारदोली-विजय संदेश 1928
2. प्रणभंग 1929
3. रेणुका 1935
4. हुंकार 1938
5. रसवन्ती 1939
6. द्वन्द्गीत 1940
7. कुरूक्षेत्र 1946
8. धुप-छाह 1947
9. सामधेनी 1947
10. बापू 1947
11. इतिहास के आँसू 1951
12. धूप और धुआँ 1951
13. मिर्च का मजा 1951
14. रथिमरथी 1952
15. दिल्ली 1954
16. नीम के पत्ते 1954
17. नील कुसुम 1955
18. सूरज का ब्याह 1955

गद्य

19. चक्रवाल 1956
20. कवि-श्री 1957
21. सीपी और शंख 1957
22. नये सुभाषित 1957
23. लोकप्रिय कवि दिनकर 1960
24. उर्वशी 1961
25. परशुराम की प्रतीक्षा 1963
26. आत्मा की आँखें 1964
27. कोयला और कवित्व 1964
28. मृत्ति-तिलक 1964
29. दिनकर की सूक्तियाँ 1964
30. हारे की हरिनाम 1970
31. संचियता 1973
32. दिनकर के गीत 1973
33. रश्मिलोक 1974
34. उर्वशी तथा अन्य श्रृंगारिक कविताएँ 1974
35. मिट्टी की ओर 1946
36. चित्तोड़ का साका 1948

37. अर्धनारीश्वर 1952
38. रेती के फूल 1954
39. हमारी सांस्कृतिक एकता 1955
40. भारत की सांस्कृतिक कहानी 1955
41. संस्कृति के चार अध्याय 1956
42. उजली आग 1956
43. देश-विदेश 1957
44. राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रीय एकता 1955
45. काव्य की भूमिका 1958
46. पन्त-प्रसाद और मैथिलीशरण 1958
47. वेणु वन 1958
48. धर्म, नैतिकता और विज्ञान 1969
49. वट-पीपल 1961
50. लोकदेव नेहरू 1965
51. शुद्ध कविता की खोज 1966
52. साहित्य-मुखी 1968
53. राष्ट्र-भाषा-आंदोलन और गांधीजी 1968
54. हे राम! 1968
55. संस्मरण और श्रृंजलियाँ 1970
56. भारतीय एकता 1971
57. मेरी यात्राएँ 1971
58. दिनकर की डायरी 1973
59. चेतना को शिला 1973
60. विवाह की मुसीबतें 1973
61. आधुनिक बोध 1973

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि दिनकरजी अहिंदीभाषियों के बीच हिन्दी के सभी कवियों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय थे और अपनी मातृभाषा से प्रेम करने वालों के प्रतीक थे। हरिवंश राय बच्चन ने कहा कि दिनकरजी को एक नहीं, बल्कि गद्य, पद्य, भाषा और हिन्दी-सेवा के लिये अलग-अलग चार ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने चाहिये। रामवृक्ष बेनीपुरी ने कहा कि दिनकरजी ने देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन को स्वर दिया। नामवर सिंह ने कहा कि दिनकरजी अपने युग के सचमुच सूर्य थे।

प्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र यादव ने कहा कि दिनकरजी की रचनाओं ने उन्हें बहुत प्रेरित किया। प्रसिद्ध रचनाकार काशीनाथ सिंह ने कहा कि दिनकरजी राष्ट्रवादी और साम्राज्य-विरोधी कवि थे।

रचनाओं के कुछ अंश

किस भांति उठूँ इतना ऊपर? मस्तक कैसे छू पाँऊं मैं . ग्रीवा तक हाथ न जा सकते, उँगलियाँ न छू सकती ललाट . वामन की पूजा किस प्रकार, पहुँचे तुम तक मानव,विराट .

रे रोक युधिष्ठर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर
पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर --(हिमालय से)

डॉ. सुनील कुमार परीट

क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो;
उसको क्या जो दन्तहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो। -- (कुरुक्षेत्र से)
पत्थर सी हों मांसपेशियाँ, लौहदंड भुजबल अभय;
नस-नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय। -- (रश्मिरथी से)
हटो व्योम के मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम जाते हैं;
दूध-दूध ओ वत्स तुम्हारा, दूध खोजने हम जाते है।
सच पूछो तो सर में ही, बसती है दीप्ति विनय की;
सन्धि वचन संपूज्य उसी का, जिसमें शक्ति विजय की।
सहनशीलता, क्षमा, दया को तभी पूजता जग है;
बल का दर्प चमकता उसके पीछे जब जगमग है।"
दो न्याय अगर तो आधा दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।-- (रश्मिरथी / तृतीय सर्ग / भाग 3)
जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है। -- (रश्मिरथी / तृतीय सर्ग / भाग 3) ।।

वैराग्य छोड़ बाँहों की विभा संभालो चट्टानों की छाती से दूध निकालो है रुकी जहाँ भी धार शिलाएं तोड़ो पीयूष चन्द्रमाओं का पकड़ निचोड़ो (वीर से)

पद

1947 में देश स्वाधीन हुआ और वह बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रध्यापक व विभागाध्यक्ष नियुक्त होकर मुज़फ़्फ़रपुर पहुँचे। 1952 में जब भारत की प्रथम संसद का निर्माण हुआ, तो उन्हें राज्यसभा का सदस्य चुना गया और वह दिल्ली आ गए। दिनकर 12 वर्ष तक संसद-सदस्य रहे, बाद में उन्हें सन 1964 से 1965 ई. तक भागलपुर विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया। लेकिन अगले ही वर्ष भारत सरकार ने उन्हें 1965 से 1971 ई. तक अपना हिन्दी सलाहकार नियुक्त किया और वह फिर दिल्ली लौट आए। फिर तो ज्वार उमरा और रेणुका, हुंकार, रसवंती और द्वंद्वगीत रचे गए। रेणुका और हुंकार की कुछ रचनाऐं यहाँ-वहाँ प्रकाश में आईं और अग्रेज़ प्रशासकों को समझते देर न लगी कि वे एक ग़लत आदमी को अपने तंत्र का अंग बना बैठे हैं और दिनकर की फ़ाइल तैयार होने लगी, बात-बात पर क़ैफ़ियत तलब होती और चेतावनियाँ मिला करतीं। चार वर्ष में बाईस बार उनका तबादला किया गया।

सम्मान

दिनकरजी को उनकी रचना कुरुक्षेत्र के लिये काशी नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तरप्रदेश सरकार और भारत सरकार से सम्मान मिला। संस्कृति के चार अध्याय के लिये उन्हें 1959 में साहित्य अकादमी से सम्मानित किया गया। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद ने उन्हें 1959 में पद्म विभूषण से सम्मानित किया। भागलपुर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलाधिपति और बिहार के राज्यपाल जाकिर हुसैन, जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने, ने उन्हें डॉक्ट्रेट की मानद उपाधि से सम्मानित किया। गुरू महाविद्यालय ने उन्हें विद्या वाचस्पति के लिये चुना। 1968 में राजस्थान विद्यापीठ ने उन्हें साहित्य-चूड़ामणि से सम्मानित किया। वर्ष 1972 में काव्य रचना उर्वशी के लिये उन्हें ज्ञानपीठ से सम्मानित किया गया। 1952 में वे राज्यसभा के लिए चुने गये और लगातार तीन बार राज्यसभा के सदस्य रहे।

मरणोपरान्त सम्मान

30 सितम्बर 1987 को उनकी 13वीं पुण्यतिथि पर तत्कालीन राष्ट्रपति जैल सिंह ने उन्हें श्रद्धांजलि दी। 1999 में भारत सरकार ने उनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया। केंद्रीय सूचना और प्रसारण मन्त्री प्रियरंजन दास मुंशी ने उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर रामधारी सिंह दिनकर- व्यक्तित्व और कृतित्व पुस्तक का विमोचन किया।

उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर बिहार के मुख्यमन्त्री नीतीश कुमार ने उनकी भव्य प्रतिमा का अनावरण किया। कालीकट विश्वविद्यालय में भी इस अवसर को दो दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया गया।

डॉ. सुनील कुमार परीट

३. सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय

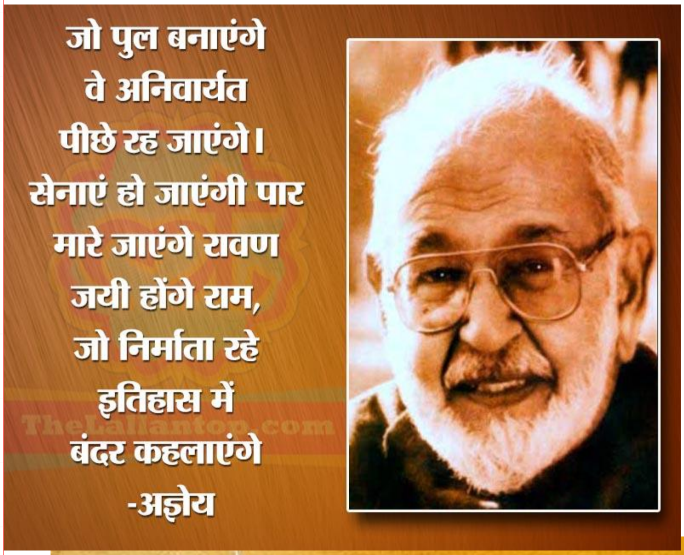

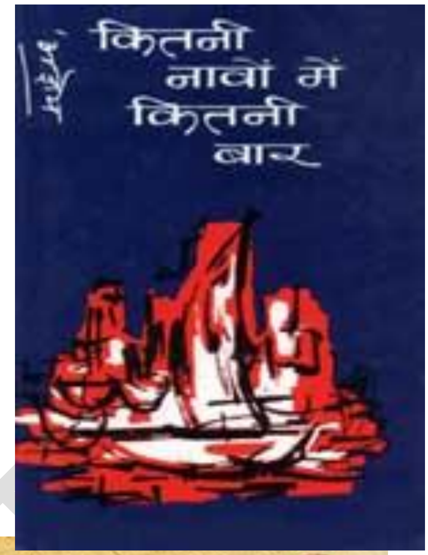

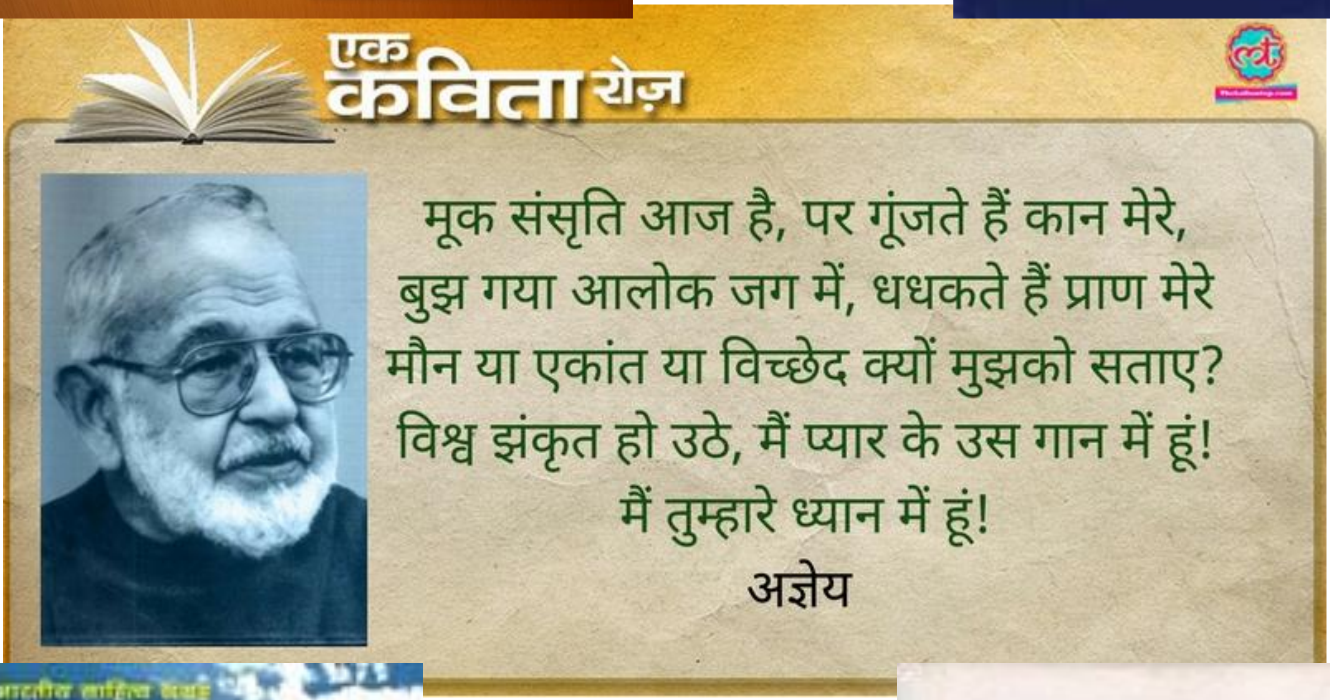

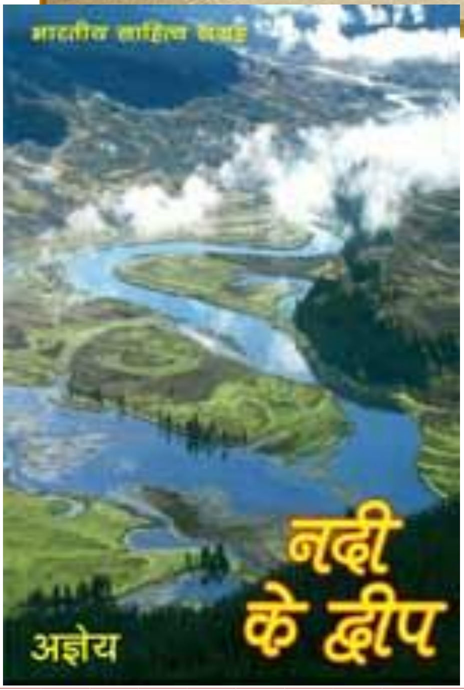

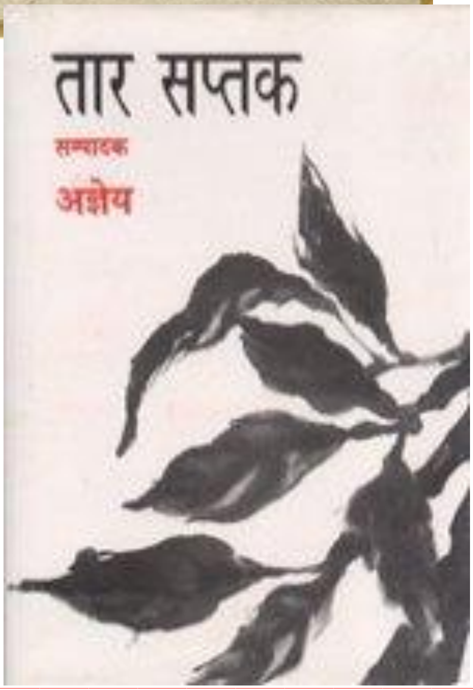

उपनाम:	अज्ञेय
जन्म:	7 मार्च 1911 कुशीनगर, देवरिया, उत्तर प्रदेश, भारत
मृत्यु:	4 अप्रैल 1987 दिल्ली, भारत
कार्यक्षेत्र:	कवि, लेखक
राष्ट्रीयता:	भारतीय
भाषा:	हिन्दी
काल:	आधुनिक काल
विधा:	कहानी, कविता, उपन्यास, निबंध
विषय:	सामाजिक, यथार्थवादी
साहित्यिक आन्दोलन:	नई कविता, प्रयोगवाद
प्रमुख कृति(याँ):	आँगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार
हस्ताक्षर:	अज्ञेय

साहित्य अकादमी तथा ज्ञानपीठ द्वारा सम्मानित

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन "अज्ञेय" (7 मार्च, 1911- 4 अप्रैल, 1987) को प्रतिभासम्पन्न कवि, शैलीकार, कथा-साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण मोड़ देने वाले कथाकार, ललित-निबन्धकार, सम्पादक और सफल अध्यापक के रूप में जाना जाता है।[1] इनका जन्म 7 मार्च 1911 को उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कुशीनगर नामक ऐतिहासिक स्थान में हुआ। बचपन लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। बी.एस.सी. करके अंग्रेजी में एम.ए. करते समय क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़कर बम बनाते हुए पकडे गये और वहाँ से फरार भी हो गए। सन1930 ई. के अन्त में पकड़ लिये गये। अज्ञेय प्रयोगवाद एवं नई कविता को साहित्य जगत में प्रतिष्ठित करने वाले कवि हैं। अनेक जापानी हाइकु कविताओं को अज्ञेय ने अनूदित किया। बहुआयामी व्यक्तित्व के एकान्तमुखी प्रखर कवि होने के साथ-साथ वे एक अच्छे फोटोग्राफर और सत्यान्वेषी पर्यटक भी थे।

शिक्षा

प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा पिता की देख रेख में घर पर ही संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी और बांग्ला भाषा व साहित्य के अध्ययन के साथ हुई। 1925 में पंजाब से एंट्रेंस की परीक्षा पास की और उसके बाद मद्रास क्रिस्चन कॉलेज में दाखिल हुए। वहाँ से विज्ञान में इंटर की पढ़ाई पूरी कर 1927 में वे बी.एससी. करने के लिए लाहौर के फॅरमन कॉलेज के छात्र बने। 1929 में

डॉ. सुनील कुमार परीट

बी. एससी. करने के बाद एम.ए. में उन्होंने अंग्रेजी विषय लिया; पर क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लेने के कारण पढ़ाई पूरी न हो सकी।

व्यक्तिगत जीवन

अज्ञेय जी के पिता पण्डित हीरानंद शास्त्री प्राचीन लिपियों के विशेषज्ञ थे। इनका बचपन इनके पिता की नौकरी के साथ कई स्थानों की परिक्रमा करते हुए बीता। कुशीनगर में अज्ञेय जी का जन्म 7 मार्च, 1911 को हुआ था। लखनऊ, श्रीनगर, जम्मू घूमते हुए इनका परिवार 1919 में नालंदा पहुँचा। नालंदा में अज्ञेय के पिता ने अज्ञेय से हिन्दी लिखवाना शुरू किया। इसके बाद 1921 में अज्ञेय का परिवार ऊटी पहुँचा ऊटी में अज्ञेय के पिता ने अज्ञेय का यज्ञोपवीत कराया और अज्ञेय को वात्स्यायन कुलनाम दिया। अज्ञेय ने घर पर ही भाषा, साहित्य, इतिहास और विज्ञान की प्रारंभिक शिक्षा आरंभ की। 1925 में अज्ञेय ने मैट्रिक की प्राइवेट परीक्षा पंजाब से उत्तीर्ण की इसके बाद दो वर्ष मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज में एवं तीन वर्ष फ़ॉर्मन कॉलेज, लाहौर में संस्थागत शिक्षा पाई। वहीं बी.एस.सी.और अंग्रेज़ी में एम.ए.पूर्वार्द्ध पूरा किया। इसी बीच भगत सिंह के साथी बने और 1930 में गिरफ़्तार हो गए।

कार्यकाल

अज्ञेय ने छह वर्ष जेल और नज़रबंदी भोगने के बाद 1936 में कुछ दिनों तक आगरा के समाचार पत्र सैनिक के संपादन मंडल में रहे, और बाद में 1937-39 में विशाल भारत के संपादकीय विभाग में रहे। कुछ दिन ऑल इंडिया रेडियो में रहने के बाद अज्ञेय 1943 में सैन्य सेवा में प्रविष्ट हुए। 1946 में सैन्य सेवा से मुक्त होकर वह शुद्ध रुप से साहित्य में लगे। मेरठ और उसके बाद इलाहाबाद और अंत में दिल्ली को उन्होंने अपना केंद्र बनाया। अज्ञेय ने प्रतीक का संपादन किया। प्रतीक ने ही हिन्दी के आधुनिक साहित्य की नई धारणा के लेखकों, कवियों को एक नया सशक्त मंच दिया और साहित्यिक पत्रकारिता का नया इतिहास रचा। 1965 से 1968 तक अज्ञेय साप्ताहिक दिनमान के संपादक रहे। पुन: प्रतीक को नाम, नया प्रतीक देकर 1973 से निकालना शुरू किया और अपना अधिकाधिक समय लेखन को देने लगे। 1977 में उन्होंने दैनिक पत्र नवभारत टाइम्स के संपादन का भार संभाला। अगस्त 1979 में उन्होंने नवभारत टाइम्स से अवकाश ग्रहण किया।

सप्तक

अज्ञेय ने 1943 में सात कवियों के वक्तव्य और कविताओं को लेकर एक लंबी भूमिका के साथ तार सप्तक का संपादन किया। अज्ञेय ने आधुनिक हिन्दी कविता को एक नया मोड़ दिया, जिसे प्रयोगशील कविता की संज्ञा दी गई। इसके बाद समय-समय पर उन्होंने दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक और चौथा सप्तक का संपादन भी किया।

कृतित्व

अज्ञेय का कृतित्व बहुमुखी है और वह उनके समृद्ध अनुभव की सहज परिणति है। अज्ञेय की प्रारंभ की रचनाएँ अध्ययन की गहरी छाप अंकित करती हैं या प्रेरक व्यक्तियों से दीक्षा की गरमाई का स्पर्श देती हैं, बाद की रचनाएँ निजी अनुभव की परिपक्वता की खनक देती हैं। और साथ ही भारतीय विश्वदृष्टि से तादात्म्य का बोध कराती हैं। अज्ञेय स्वाधीनता को महत्त्वपूर्ण मानवीय मूल्य मानते थे, परंतु स्वाधीनता उनके लिए एक सतत जागरुक प्रक्रिया रही। अज्ञेय ने अभिव्यक्ति के लिए कई विधाओं, कई कलाओं और भाषाओं का प्रयोग किया, जैसे कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, यात्रा वृत्तांत, वैयक्तिक निबंध, वैचारिक निबंध, आत्मचिंतन, अनुवाद, समीक्षा, संपादन। उपन्यास के क्षेत्र में 'शेखर' एक जीवनी हिन्दी उपन्यास का एक कीर्तिस्तंभ बना। नाट्य-विधान के प्रयोग के लिए 'उत्तर प्रियदर्शी' लिखा, तो आंगन के पार द्वार संग्रह में वह अपने को विशाल के साथ एकाकार करने लगते हैं।

चुप-चाप

चुप-चाप चुप-चाप
झरने का स्वर
हम में भर जाय,

चुप-चाप चुप-चाप
शरद की चाँदनी
झील की लहरों पर तिर आय,

चुप-चाप चुप-चाप
जीवन का रहस्य
जो कहा न जाय, हमारी
ठहरी आँखों में गहराय,

चुप-चाप चुप-चाप
हम पुलकित विराट में डूबें
पर विराट हम में मिल जाय-

चुप-चाप चुप-चाऽऽप...

प्रमुख कृतियाँ

- कविता भग्नदूत (1933)
- चिंता (1942)
- इत्यलम (1946)
- हरी घास पर क्षण भर (1949)
- बावरा अहेरी (1954)
- आंगन के पार द्वार (1961)
- पूर्वा (1965)
- कितनी नावों में कितनी बार (1967)
- क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1969)
- सागर मुद्रा (1970)
- पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1973)

उपन्यास

- शेखर,एक जीवनी (1966)
- नदी के द्वीप (1952)
- अपने अपने अजनबी (1961)

कितनी नावों में कितनी बार

कितनी दूरियों से कितनी बार
कितनी डगमग नावों में बैठ कर
मैं तुम्हारी ओर आया हूँ
ओ मेरी छोटी-सी ज्योति!
कभी कुहासे में तुम्हें न देखता भी
पर कुहासे की ही छोटी-सी रुपहली झलमल में
पहचानता हुआ तुम्हारा ही प्रभा-मंडल।
कितनी बार मैं,
धीर, आश्वस्त, अक्लांत—
ओ मेरे अनबुझे सत्य! कितनी बार...

डॉ. सुनील कुमार परीट

और कितनी बार कितने जगमग जहाज़
मुझे खींच कर ले गये हैं कितनी दूर
किन पराए देशों की बेदर्द हवाओं में
जहाँ नंगे अंधेरों को
और भी उघाड़ता रहता है
एक नंगा, तीखा, निर्मम प्रकाश—
जिसमें कोई प्रभा-मंडल नहीं बनते
केवल चौंधियाते हैं तथ्य, तथ्य—तथ्य—
सत्य नहीं, अंतहीन सच्चाइयाँ...
कितनी बार मुझे
खिन्न, विकल, संत्रस्त—
कितनी बार!

कार्यक्षेत्र

1930 से 1936 तक विभिन्न जेलों में कटे। 1936-37 में **सैनिक** और **विशाल भारत** नामक पत्रिकाओं का संपादन किया। 1943 से 1946 तक ब्रिटिश सेना में रहे; इसके बाद इलाहाबाद से प्रतीक नामक पत्रिका निकाली और ऑल इंडिया रेडियो की नौकरी स्वीकार की। देश-विदेश की यात्राएं कीं। जिसमें उन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से लेकर जोधपुर विश्वविद्यालय तक में अध्यापन का काम किया। दिल्ली लौटे और दिनमान साप्ताहिक, नवभारत टाइम्स, अंग्रेजी पत्र **वाक्** और **एवरीमैंस** जैसी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। 1980 में उन्होंने **वत्सलनिधि** नामक एक न्यास की स्थापना की जिसका उद्देश्य साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में कार्य करना था। दिल्ली में ही 4 अप्रैल 1987 को उनकी मृत्यु हुई। 1964 में **आँगन के पार द्वार** पर उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ और 1978 में **कितनी नावों में कितनी बार** पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार।[2]

प्रमुख कृतियां

कविता संग्रह:-भग्नदूत 1933, चिन्ता 1942,इत्यलम्1946,हरी घास पर क्षण भर 1949, बावरा अहेरी 1954,इन्द्रधनु रौंदे हुये ये 1957,अरी ओ करुणा प्रभामय 1959,आँगन के पार द्वार 1961, कितनी नावों में कितनी बार (1967), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (1970), सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974), महावृक्ष के नीचे (1977), नदी की बाँक पर छाया (1981), प्रिज़न डेज़ एण्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी में,1946)।[3]

- **कहानियाँ**:-विपथगा 1937, परम्परा 1944, कोठरीकी बात 1945, शरणार्थी 1948, जयदोल 1951
- **उपन्यास**:-शेखर एक जीवनी-प्रथम भाग 1941, द्वितीय भाग 1944,नदीके द्वीप 1951, अपने - अपने अजनबी 1961।
- **यात्रा वृतान्त**:- अरे यायावर रहेगा याद? 1943,एक बूँद सहसा उछली 1960।
- **निबंध संग्रह :** सबरंग, त्रिशंकु, आत्मनेपद, आधुनिक साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य, आलवाल,
- **आलोचना**:- त्रिशंकु 1945, आत्मनेपद 1960, भवन्ती 1971, अद्यतन 1971 ई.।
- **संस्मरण**: स्मृति लेखा
- **डायरियां**: भवंती, अंतरा और शाश्वती।
- **विचार गद्य**: संवत्सर
- **नाटक**: उत्तरप्रियदर्शी

संपादित ग्रंथ:- आधुनिक हिन्दी साहित्य (निबन्ध संग्रह)1942, तार सप्तक (कविता संग्रह) 1943, दूसरा सप्तक (कविता संग्रह)1951, तीसरा सप्तक (कविता संग्रह), सम्पूर्ण 1959, नये एकांकी 1952, रूपांबरा 1960।

उनका लगभग समग्र काव्य सदानीरा (दो खंड) नाम से संकलित हुआ है तथा अन्यान्य विषयों पर लिखे गए सारे निबंध सर्जना और सन्दर्भ तथा केंद्र और परिधि नामक ग्रंथो में संकलित हुए हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के संपादन के साथ-साथ अज्ञेय ने तारसप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक जैसे युगांतरकारी काव्य संकलनों का भी संपादन

किया तथा **पुष्करिणी** और **रूपांबरा** जैसे काव्य-संकलनों का भी। वे वत्सलनिधि से प्रकाशित आधा दर्जन निबंध- संग्रहों के भी संपादक हैं। प्रख्यात साहित्यकार अज्ञेय ने यद्यपि कहानियां कम ही लिखीं और एक समय के बाद कहानी लिखना बिलकुल बंद कर दिया, परंतु हिन्दी कहानी को आधुनिकता की दिशा में एक नया और स्थायी मोड़ देने का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है।[4] निस्संदेह वे आधुनिक साहित्य के एक शलाका-पुरूष थे जिसने हिंदी साहित्य में भारतेंदु के बाद एक दूसरे आधुनिक युग का प्रवर्तन किया।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन के लिए 'अज्ञेय' उपनाम नहीं बल्कि एक मकसद था

कवि रूप में अज्ञेय का निश्छल भोलापन हमें अगर अनायास खींचता है तो उनकी कहानियों और उपन्यासों के पात्र विवश करते हैं कि हर सवाल पर फिर से सोचा जाए

'जो उसको जानता है, उसके लिए वो अज्ञात है. जो उसको नहीं जानता उसके लिए वो ज्ञात है' (स्रोत - केन उपनिषद)
अज्ञेय ने शायद यही सोचकर अपना उपनाम 'अज्ञेय' रखा हो. दरअसल उस समय उनको जानने वालों के लिए कवि के रूप में अज्ञेय अज्ञात थे और जो व्यक्ति के रूप में उन्हें नहीं जानते थे, वे उनकी कविताओं से उन्हें पहचान रहे थे. वैसे उनका पूरा नाम सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन (7 मार्च 1911- 4 अप्रैल 1987) था. बाद में उन्होंने इसके साथ उपनाम अज्ञेय भी जोड़ लिया था. उस दौर में कवियों के लिए एक उपनाम जरूरी था हालांकि अज्ञेय लीक पर चलनेवाले नहीं लीक को तोड़नेवाले लेखक थे. इस उपनाम के जरिए वे लेखक और कवि को एक-दूसरे से अलगाना चाहते थे.

यह भी बड़ी दिलचस्प बात है कि बाकी साहित्यकारों का चेहरा-मोहरा कभी चर्चा में रहा हो या न रहा हो लेकिन अज्ञेय ने अपने समय में इसकी वजह से भी चर्चाएं बटोरी थीं. ज्यादातर हिंदी लेखकों की तरह वे दीन-हीन या उदास-बेजार से नहीं दिखते थे. शायद इसमें उनकी विचार शक्ति का अहम योगदान हो लेकिन उनका चेहरा दीप्त और एक तरह की कुलीनता लिए हुए था. इसको लेकर भी उनकी निंदा और स्तुति दोनों होती रही. वह दुख से घिरा चेहरा नहीं था. दुख

हुआ भी तो उसने अज्ञेय की आभा को मांजकर प्रखर करने का ही काम किया होगा. उन्होंने कहा भी है, 'दुख सबको मांजता है... ' (कविता - असाध्य वीणा).

अज्ञेय ने गद्य की तमाम विधाओं में हाथ आजमाया है और यहां उन्हें खूब सराहना भी मिली. लेकिन गद्य लेखक के बनिस्बत उनका यायावर और कवि रूप ज्यादा सहज और सरल है. जैसे उनकी इन पंक्तियों को देखें - 'पार्श्व गिरि का नम्र / चीड़ों में डगर चढ़ती उमंगों सी / बिछी पैरों में नदी / ज्यों दर्द की रेखा / विहग शिशु मौन नीड़ो में मैंने आंखभर देखा / दिया मन को दिलासा / पुनः आऊंगा / भले ही दिन बरस – दिन- अनगिन युगों के बाद / क्षितिज ने पलक-सी खोली / दमककर दामिनी बोली / अरे यायावर रहेगा याद?'

मासूम और भोले से किसी यात्री के दृश्यों में बंध-बंधकर रुकते कदम, छोड़ जाने की पीड़ा, 'फिर आऊंगा' का दूसरों से ज्यादा खुद को दिया जाने वाला आश्वासन और इसके साथ उदासी. ये सब बातें यहां सीधे मन से जुड़ जाती हैं. यहां उनके उपन्यास के पात्रों की तरह कोई असामाजिक-सा व्यक्ति नहीं है. यहां विचारों की गठरी अपने सर उठाए चलने वाला कोई चिन्तक भी नहीं है. यहां खुद से और प्रकृति से प्यार करनेवाला कोई एक सहज इंसान है.

हालांकि 'असाध्य वीणा' तक पहुंचते-पहुंचते यह यात्रा भी थोड़ी दार्शनिक हो जाती है. बौद्ध धर्म और चिंतन की छाया में वे जीवन को देखना और आंकना शुरू कर देते हैं. इससे पहले की कविताओं में गुंथे उनके विचार बहुत सहज हैं.

अज्ञेय के बारे में यह एक विचित्र बात है कि एक कवि के रूप में उनकी यात्रा एक अकेले की यात्रा से सामाजिकता और समाज की तरफ मुड़ती दिखती है – 'यह दीप अकेला स्नेहभरा / है गर्व भरा मदमाता पर / इसको भी पंक्ति को दे दो.' वहीं उनके उपन्यासों में शुरू में जो थोड़ा बहुत समाज है वह भी धीरे-धीरे एकांत और अकेलेपन की यात्रा की तरफ क्रमशः बढ़ता जाता है. उनके तीन प्रमुख उपन्यास हैं – शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, और अपने-अपने अजनबी, इन तीनों से यह बात पूरी तरह साफ हो जाती है.

कवि रूप में उनका निश्छल भोलापन हमें अपनी तरफ अगर अनायास खींचता है तो कहानियों-उपन्यासों में हर बिंदु पर कई सिरों से विचार करते पात्र विवश करते हैं कि हर सवाल पर फिर से सोचा जाए

इस तरह से एक ही साथ अज्ञेय के दो रूप हैं. दोनों एक-दूसरे के बिलकुल विरोधी पर दोनों ही सच्चे और सही हैं. कवि रूप में उनका निश्छल भोलापन हमें अपनी तरफ अगर अनायास खींचता है तो कहानियों-उपन्यासों में हर बिंदु पर नए सिरे से सोचते , सवाल करते पात्र विवश करते हैं कि हर सवाल पर फिर से सोचा जाए.

'शेखर एक जीवनी' उनका पहला उपन्यास था. यह आत्मकथात्मक शैली का उपन्यास है और शायद इसलिए अज्ञेय को इस बारे में कहना पड़ा था, 'शेखर एक जीवनी की कुछ घटनाएं और स्थान उनके जीवन से मिलते-जुलते हैं. लेकिन जैसे-जैसे शेखर का विकास होता गया, शेखर और रचनाकार एक दूसरे से अलग होते गए.' यह सफाई होते हुए भी सफाई नहीं थी. अज्ञेय का लिखना बहुत सुचिंतित और सुगठित हुआ करता था. दृष्टि बिलकुल साफ़ और स्पष्ट. वे व्यक्ति की निजता के बहुत बड़े हिमायती थे. सफाई देना उनका न स्वभाव था, न उद्देश्य पर आत्मकथात्मक उपन्यासों की यह सबसे बड़ी परेशानी होती है कि उपन्यास के हर फ्रेम को लोग रचनाकार से जोड़कर देखते हैं. लोगों की मनोवृत्तियों और मनोविज्ञान को गहरे से पकड़ने और पहचाननेवाला यह लेखक इस बात को खूब अच्छी तरह से समझता-बूझता था. शायद इसी वजह से उन्हें यह बात कहनी पड़ी होगी.

'शेखर एक जीवनी' को लेकर लोगों के मन में बहुत से सवाल थे. वह स्वीकार होकर भी उस तरह स्वीकार्य नहीं था. उपन्यास में जो सहज था वह समाज के लिए सहज नहीं था. शेखर, शशि (शेखर की रिश्ते की बहन) से यहां एक प्रसंग में कहता है, 'कब से तुम्हें बहन कहता हूं, लेकिन बहनें जितनी पास होती हैं उतनी पास तुम नहीं हो और जितनी दूर होती हैं उतनी दूर भी नहीं हो.' यह बात उस समय के समाज और पाठकों के लिए झटके जैसी थी.

अज्ञेय के तीसरे उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' में यह एकांत और गहरा होता है. यहां नैतिक-अनैतिक का सवाल थम जाता है. दार्शनिकता गहरी हो जाती है

शेखर जन्मजात विद्रोही है. वह परिवार, समाज और मर्यादाएं सबके प्रति प्रश्न और विद्रोह दोनों रखता है. वह स्वतंत्रता का पक्षधर है. व्यक्ति-स्वतन्त्रता का उसके निजी जीवन में बहुत गहरा अर्थ है. शेखर खुले तौर पर क्रांतिकारी है. मतलब वह वही करता है जिसकी गवाही उसका मन देता है. नैतिक-अनैतिक की परवाह यहां बिल्कुल नहीं है. ऐसा क्रांतिकारी चरित्र तब के साहित्य में बहुत दुर्लभ था. दुर्लभ होने की एक बड़ी वजह शायद यह थी कि तब साहित्यकारों के लिए इस बात के मायने ज्यादा हुआ करते थे कि समाज रचना के माध्यम से उनके बारे में क्या सोचेगा. इस नजर देखें तो अज्ञेय दुर्लभ प्रकृति के साहसी थे. शेखर एक जीवनी का उस दौर में खूब विरोध हुआ पर वह बिकी भी उसी तरह से बेपनाह. विरोध करनेवाले लोग भी इसे एक बार तो पढ़ते ही थे और अधिकतर यह पढना छुप-छुपाकर ही था.

अज्ञेय का दूसरा उपन्यास 'नदी के द्वीप' भी कुल मिलाकर पिछले उपन्यास के निज और एकांत का विस्तार है. यहां कहानी और क्षीण हुई है. यहां कुल मिलाकर चार पात्र हैं. उसमें भी दो मुख्यपात्र हैं. ये पात्र अपने ही भीतर जीते हैं. बाहर की दुनिया से इनका कोई लगाव नहीं है. मन की स्थिति बस आत्म-मंथन और आत्मालाप वाली है. नैतिकता के तकाजे यहां और भी कम हैं. मध्यमवर्गीय संवेदना वाले अति-बुद्धिजीवी ये पात्र एक-दूसरे के लिए भी जो सोचते –महसूस करते हैं वह इनके अपने भीतर ही भीतर है. उस पात्र का इससे कोई वास्ता नहीं. यहां हर एक पात्र 'नदी का द्वीप' है. हर एक का एकांत, अपना निजी एकांत.

तीसरे उपन्यास 'अपने अपने अजनबी' में यह एकांत और गहरा होता है. यहां नैतिक-अनैतिक का सवाल थम जाता है. दार्शनिकता गहरी हो जाती है. शायद यह अज्ञेय की परिपक्व उम्र का तकाजा भी था. इस उपन्यास में कैंसर से पीड़ित एक वृद्ध महिला और एक युवा स्त्री दोनों कुछ दिन बर्फ से ढके एक घर में एक साथ रहने को लाचार होते हैं. वे एक साथ यह महसूस करते हैं, 'न तो मनुष्य अपने हिसाब से जीवन चुन सकता है, न ही मृत्यु. वह बस अपने किए की जुगाली भर कर सकता है.' इस उपन्यास में जब वृद्धा की मृत्यु हो जाती है तो युवा स्त्री वह बर्फ से ढंका घर छोड़ देती है. आखिर में वह चुनने की स्वतंत्रता की खोज करते हुए आत्महत्या कर लेती है.

आलोचकों के हिसाब से 'अपने अपने अजनबी' पश्चिमी दर्शन के अस्तित्ववाद से प्रेरित था. हालांकि यह आरोप पूरी तरह सही नहीं है क्योंकि लेखक द्वारा इस रचना को भारतीय दर्शन के आशावाद से जोड़ने की सजग कोशिश दिखती है. अज्ञेय एक ध्रुव से दूसरे विपरीत ध्रुव की ओर चलते हुए इसी संतुलन को साधने वाले साहित्यकार थे.

अज्ञेय की प्रसिद्ध कविता है:-

"सांप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं -- (उत्तर दोगे)
फिर कैसे सीखा डंसना
विष कहां पाया?"

४. महादेवी वर्मा

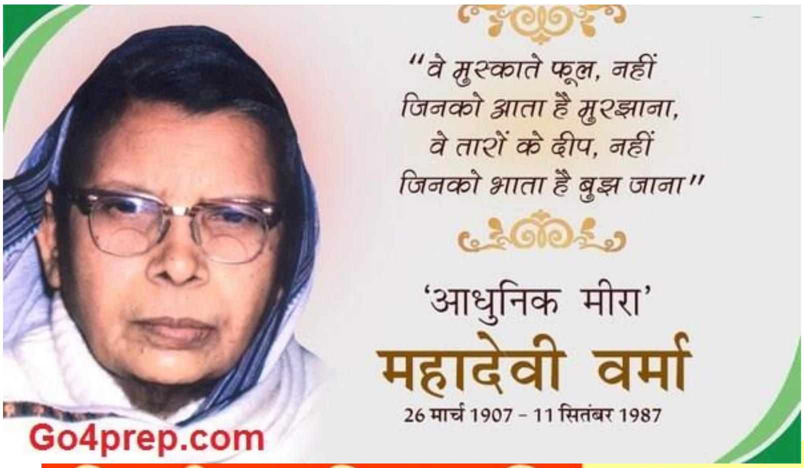

"वे मुस्काते फूल, नहीं
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं
जिनको भाता है बुझ जाना"
'आधुनिक मीरा'
महादेवी वर्मा
26 मार्च 1907 - 11 सितंबर 1987
Go4prep.com

महादेवी वर्मा
यामा

हिन्दी साहित्य की
मीरा
महादेवी वर्मा का निधन 11 सितम्बर 1987 को 80 वर्ष की आयु में इलाहाबाद में हुआ था
उनका बाल-विवाह हुआ परंतु अविवाहित की तरह उन्होंने जीवन जीया.
सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला महादेवी से राखी बंधवाते थे.
उनके परिवार में लगभग सात पीढ़ियों बाद किसी लड़की का जन्म हुआ था इसलिए उनका नाम घर की देवी या महादेवी रखा गया.
जबतक महादेवी ने मैट्रिक की परीक्षा की तबतक वे जानी-मानी कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं.
अतीत के चलचित्र, क्षणदा, शृंखला की कड़ियाँ, यामा, गिल्लू आदि को कभी भूला नहीं जा सकता

रेखाचित्र
महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा
पथ के साथी

महादेवी वर्मा
स्मृति की रेखाएँ

महादेवी वर्मा	
महादेवी वर्मा 'आजकल' के मुखपृष्ठ से	
जन्म:	२६ मार्च, १९०७ फ़र्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत
मृत्यु:	११ सितंबर, १९८७ इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत
कार्यक्षेत्र:	अध्यापक, लेखक
राष्ट्रीयता:	भारतीय
भाषा:	हिन्दी
काल:	आधुनिक काल
विधा:	गद्य और पद्य
विषय:	गीत, रेखाचित्र, संस्मरण व निबंध
साहित्यिक आन्दोलन:	छायावाद व रहस्यवाद
प्रमुख कृति(याँ):	यामा कविता संग्रह
हस्ताक्षर:	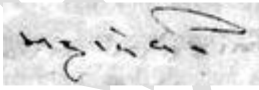

महादेवी वर्मा (२६ मार्च १९०७ — ११ सितंबर १९८७) हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से हैं। वे हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों[क] में से एक मानी जाती हैं।[1] आधुनिक हिन्दी की सबसे सशक्त कवयित्रियों में से एक होने के कारण उन्हें *आधुनिक मीरा* के नाम से भी जाना जाता है।[2] कवि निराला ने उन्हें "हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती" भी कहा है।[ख] महादेवी ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा और उसके बाद का भी। वे उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार, रुदन को देखा, परखा और करुण होकर अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की।[3] न केवल उनका काव्य बल्कि उनके सामाजसुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतना भावना भी इस दृष्टि से प्रभावित रहे। उन्होंने मन की पीड़ा को इतने स्नेह और शृंगार से सजाया कि *दीपशिखा* में वह जन-जन की पीड़ा के रूप में स्थापित हुई और उसने केवल पाठकों को ही नहीं समीक्षकों को भी गहराई तक प्रभावित किया।[ग]

उन्होंने खड़ी बोली हिन्दी की कविता में उस कोमल शब्दावली का विकास किया जो अभी तक केवल बृजभाषा में ही संभव मानी जाती थी। इसके लिए उन्होंने अपने समय के अनुकूल संस्कृत और बांग्ला के कोमल शब्दों को चुनकर हिन्दी का जामा पहनाया। संगीत की जानकार होने के कारण उनके गीतों का नाद-सौंदर्य और पैनी उक्तियों की व्यंजना शैली अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने अध्यापन से अपने कार्यजीवन की शुरूआत की और अंतिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनी रहीं। उनका बाल-विवाह हुआ परंतु उन्होंने अविवाहित की भांति जीवन-यापन किया। प्रतिभावान कवयित्री और गद्य लेखिका महादेवी वर्मा साहित्य और संगीत में निपुण होने के साथ-साथ[4] कुशल चित्रकार और सृजनात्मक अनुवादक भी थीं। उन्हें हिन्दी साहित्य के सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कार प्राप्त करने का गौरव प्राप्त है। भारत के साहित्य आकाश में महादेवी वर्मा का नाम ध्रुव तारे की भांति प्रकाशमान है। गत शताब्दी की सर्वाधिक लोकप्रिय महिला साहित्यकार के रूप में वे जीवन भर पूजनीय बनी रहीं।[5] वर्ष २००७ उनकी जन्म शताब्दी के रूप में मनाया गया।

जन्म

महादेवी वर्मा का जन्म होली के दिन 26 मार्च, 1907 को फ़र्रुख़ाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। महादेवी वर्मा के पिता श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा एक वकील थे और माता श्रीमती हेमरानी देवी थीं। महादेवी वर्मा के माता-पिता दोनों ही शिक्षा के अनन्य प्रेमी थे।[2] महादेवी वर्मा को 'आधुनिक काल की मीराबाई' कहा जाता है। महादेवी जी छायावाद रहस्यवाद के प्रमुख कवियों में से एक हैं। हिन्दुस्तानी स्त्री की उदारता, करुणा, सात्विकता, आधुनिक बौद्धिकता, गंभीरता और सरलता महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व में समाविष्ट थी। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की विलक्षणता से अभिभूत रचनाकारों ने उन्हें 'साहित्य साम्राज्ञी', 'हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणापाणि', 'शारदा की प्रतिमा' आदि विशेषणों से अभिहित करके उनकी असाधारणता को लक्षित किया। महादेवी जी ने एक निश्चित दायित्व के साथ भाषा, साहित्य, समाज, शिक्षा और संस्कृति को संस्कारित किया। कविता में रहस्यवाद, छायावाद की भूमि ग्रहण करने के बावज़ूद सामयिक समस्याओं के निवारण में महादेवी वर्मा ने सक्रिय भागीदारी निभाई।

शिक्षा

महादेवी वर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। महादेवी वर्मा ने बी.ए. जबलपुर से किया। महादेवी वर्मा अपने घर में सबसे बड़ी थी उनके दो भाई और एक बहन थी। 1919 में इलाहाबाद में 'क्रॉस्थवेट कॉलेज' से शिक्षा का प्रारंभ करते हुए महादेवी वर्मा ने 1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। तब तक उनके दो काव्य संकलन 'नीहार' और 'रश्मि' प्रकाशित होकर चर्चा में आ चुके थे।[3] महादेवी जी में काव्य प्रतिभा सात वर्ष की उम्र में ही मुखर हो उठी थी। विद्यार्थी जीवन में ही उनकी कविताऐं देश की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाने लगीं थीं।

विवाह

उन दिनों के प्रचलन के अनुसार महादेवी वर्मा का विवाह छोटी उम्र में ही हो गया था परन्तु महादेवी जी को सांसारिकता से कोई लगाव नहीं था अपितु वे तो बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित थीं और स्वयं भी एक बौद्ध भिक्षुणी बनना चाहतीं थीं। विवाह के बाद भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी। महादेवी वर्मा की शादी 1914 में 'डॉ. स्वरूप नरेन वर्मा' के साथ इंदौर में 9 साल की उम्र में हुई, वो अपने माँ पिताजी के साथ रहती थीं क्योंकि उनके पति लखनऊ में पढ़ रहे थे।

विरासत

शिक्षा और साहित्य प्रेम महादेवी जी को एक तरह से विरासत में मिला था। महादेवी जी में काव्य रचना के बीज बचपन से ही विद्यमान थे। छः सात वर्ष की अवस्था में भगवान की पूजा करती हुयी माँ पर उनकी तुकबन्दी:

ठंडे पानी से नहलाती

ठंडा चन्दन उन्हें लगाती

उनका भोग हमें दे जाती

तब भी कभी न बोले हैं
मां के ठाकुर जी भोले हैं।

वे हिन्दी के भक्त कवियों की रचनाओं और भगवान बुद्ध के चरित्र से अत्यन्त प्रभावित थी। उनके गीतों में प्रवाहित करुणा के अनन्त स्रोत को इसी कोण से समझा जा सकता है। वेदना और करुणा महादेवी वर्मा के गीतों की मुख्य प्रवृत्ति है। असीम दु:ख के भाव में से ही महादेवी वर्मा के गीतों का उदय और अन्त दोनों होता है।

महिला विद्यापीठ की स्थापना

महादेवी वर्मा ने अपने प्रयत्नों से इलाहाबाद में 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' की स्थापना की। इसकी वे प्रधानाचार्य एवं कुलपति भी रहीं। महादेवी वर्मा पाठशाला में हिन्दी-अध्यापक से प्रभावित होकर ब्रजभाषा में समस्या पूर्ति भी करने लगीं। फिर तत्कालीन खड़ी बोली की कविता से प्रभावित होकर खड़ी बोली में रोला और हरिगीतिका छन्दों में काव्य लिखना प्रारम्भ किया। उसी समय माँ से सुनी एक करुण कथा को लेकर सौ छन्दों में एक खण्डकाव्य भी लिख डाला। 1932 में उन्होंने महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चाँद' का कार्यभार सँभाला। प्रयाग में अध्यापन कार्य से जुड़ने के बाद हिन्दी के प्रति गहरा अनुराग रखने के कारण महादेवी वर्मा दिनों-दिन साहित्यिक क्रियाकलापों से जुड़ती चली गईं। उन्होंने न केवल 'चाँद' का सम्पादन किया वरन् हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की। उन्होंने 'साहित्यकार' मासिक का संपादन किया और 'रंगवाणी' नाट्य संस्था की भी स्थापना की।

जीवनी

मुख्य लेख: महादेवी वर्मा का जीवन परिचय

जन्म और परिवार

महादेवी का जन्म २६ मार्च १९०७ को प्रातः ८ बजे[6] फ़र्रुख़ाबाद उत्तर प्रदेश, भारत में हुआ। उनके परिवार में लगभग २०० वर्षों या सात पीढ़ियों के बाद पहली बार पुत्री का जन्म हुआ था। अतः बाबा बाबू बाँके विहारी जी हर्ष से झूम उठे और इन्हें घर की देवी — महादेवी मानते हुए[6] पुत्री का नाम महादेवी रखा। उनके पिता श्री गोविंद प्रसाद वर्मा भागलपुर के एक कॉलेज में प्राध्यापक थे। उनकी माता का नाम हेमरानी देवी था। हेमरानी देवी बड़ी धर्म परायण, कर्मनिष्ठ, भावुक एवं शाकाहारी महिला थीं।[6] विवाह के समय अपने साथ सिंहासनासीन भगवान की मूर्ति भी लायी थीं[6] वे प्रतिदिन कई घंटे पूजा-पाठ तथा रामायण, गीता एवं विनय पत्रिका का पारायण करती थीं और संगीत में भी उनकी अत्यधिक रुचि थी। इसके बिल्कुल विपरीत उनके पिता गोविन्द प्रसाद वर्मा सुन्दर, विद्वान, संगीत प्रेमी, नास्तिक, शिकार करने एवं घूमने के शौकीन, मांसाहारी तथा हँसमुख व्यक्ति थे। महादेवी वर्मा के मानस बंधुओं में सुमित्रानंदन पंत एवं निराला का नाम लिया जा सकता है, जो उनसे जीवन पर्यन्त राखी बँधवाते रहे।[7] निराला जी से उनकी अत्यधिक निकटता थी,[8] उनकी पुष्ट कलाइयों में महादेवी जी लगभग चालीस वर्षों तक राखी बाँधती रहीं।[9]

शिक्षा

महादेवी जी की शिक्षा इंदौर में मिशन स्कूल से प्रारम्भ हुई साथ ही संस्कृत, अंग्रेजी, संगीत तथा चित्रकला की शिक्षा अध्यापकों द्वारा घर पर ही दी जाती रही। बीच में विवाह जैसी बाधा पड़ जाने के कारण कुछ दिन शिक्षा स्थगित रही। विवाहोपरान्त महादेवी जी ने १९१९ में क्रास्थवेट कॉलेज इलाहाबाद में प्रवेश लिया और कॉलेज के छात्रावास में रहने लगीं। १९२१ में महादेवी जी ने आठवीं कक्षा में प्रान्त भर में प्रथम स्थान प्राप्त किया। यहीं पर उन्होंने अपने काव्य जीवन की शुरुआत की। वे सात वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखने लगी थीं और १९२५ तक जब उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की, वे एक सफल कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कविताओं का प्रकाशन होने लगा था। कालेज में सुभद्रा कुमारी चौहान के साथ उनकी घनिष्ठ मित्रता हो गई। सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी जी का हाथ पकड़ कर सखियों के बीच में ले जाती और कहतीं — “सुनो, ये कविता भी लिखती हैं”।

१९३२ में जब उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम॰ए॰ पास किया तब तक उनके दो कविता संग्रह *नीहार* तथा *रश्मि* प्रकाशित हो चुके थे।

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर!
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम-सा घुल रे, मृदु-तन!
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल-गल
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल!
तारे शीतल कोमल नूतन
माँग रहे तुझसे ज्वाला कण;
विश्व-शलभ सिर धुन कहता मैं
हाय, न जल पाया तुझमें मिल!
सिहर-सिहर मेरे दीपक जल!
जलते नभ में देख असंख्यक
स्नेह-हीन नित कितने दीपक
जलमय सागर का उर जलता;
विद्युत ले घिरता है बादल!
विहँस-विहँस मेरे दीपक जल!
द्रुम के अंग हरित कोमलतम
ज्वाला को करते हृदयंगम
वसुधा के जड़ अन्तर में भी
बन्दी है तापों की हलचल;
बिखर-बिखर मेरे दीपक जल!
मेरे निस्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर।
मैं अंचल की ओट किये हूँ!
अपनी मृदु पलकों से चंचल
सहज-सहज मेरे दीपक जल!
सीमा ही लघुता का बन्धन
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन
मैं दृग के अक्षय कोषों से-
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल!
सहज-सहज मेरे दीपक जल!
तुम असीम तेरा प्रकाश चिर
खेलेंगे नव खेल निरन्तर,
तम के अणु-अणु में विद्युत-सा
अमिट चित्र अंकित करता चल,
सरल-सरल मेरे दीपक जल!
तू जल-जल जितना होता क्षय;
यह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू
उसकी उज्जवल स्मित में घुल खिल!
मदिर-मदिर मेरे दीपक जल!
प्रियतम का पथ आलोकित कर!

वैवाहिक जीवन

सन् १९१६ में उनके बाबा श्री बाँके विहारी ने इनका विवाह बरेली के पास नबाव गंज कस्बे के निवासी श्री स्वरूप नारायण वर्मा से कर दिया, जो उस समय दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। श्री वर्मा इण्टर करके लखनऊ मेडिकल कॉलेज में बोर्डिंग हाउस में रहने लगे। महादेवी जी उस समय क्रास्थवेट कॉलेज इलाहाबाद के छात्रावास में थीं। श्रीमती महादेवी वर्मा को विवाहित जीवन से विरक्ति थी। कारण कुछ भी रहा हो पर श्री स्वरूप नारायण वर्मा से कोई वैमनस्य नहीं था। सामान्य स्त्री-पुरुष के रूप में उनके सम्बंध मधुर ही रहे। दोनों में कभी-कभी पत्राचार भी होता था। यदा-कदा श्री वर्मा इलाहाबाद में उनसे मिलने भी आते थे। श्री वर्मा ने महादेवी जी के कहने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया। महादेवी जी का जीवन तो एक संन्यासिनी का जीवन था ही। उन्होंने जीवन भर श्वेत वस्त्र पहना, तख्त पर सोईं और कभी शीशा नहीं देखा। सन् १९६६ में पति की मृत्यु के बाद वे स्थाई रूप से इलाहाबाद में रहने लगीं।

कार्यक्षेत्र

महादेवी, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी आदि के साथ

महादेवी का कार्यक्षेत्र लेखन, संपादन और अध्यापन रहा। उन्होंने इलाहाबाद में प्रयाग महिला विद्यापीठ के विकास में महत्वपूर्ण योगदान किया। यह कार्य अपने समय में महिला-शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम था। इसकी वे प्रधानाचार्य एवं कुलपति भी रहीं। १९३२ में उन्होंने महिलाओं की प्रमुख पत्रिका 'चाँद' का कार्यभार संभाला। १९३० में नीहार, १९३२ में रश्मि, १९३४ में नीरजा, तथा १९३६ में सांध्यगीत नामक उनके चार कविता संग्रह प्रकाशित हुए। १९३९ में इन चारों काव्य संग्रहों को उनकी कलाकृतियों के साथ वृहदाकार में *यामा* शीर्षक से प्रकाशित किया गया। उन्होंने गद्य, काव्य, शिक्षा और चित्रकला सभी क्षेत्रों में नए आयाम स्थापित किये। इसके अतिरिक्त उनकी 18 काव्य और गद्य कृतियां हैं जिनमें *मेरा परिवार*, *स्मृति की रेखाएं*, *पथ के साथी*, *शृंखला की कड़ियाँ* और अतीत के चलचित्र प्रमुख हैं। सन १९५५ में महादेवी जी ने इलाहाबाद में साहित्यकार संसद की स्थापना की और पं इलाचंद्र जोशी के सहयोग से साहित्यकार का संपादन संभाला। यह इस संस्था का मुखपत्र था। उन्होंने भारत में महिला कवि सम्मेलनों की नीव रखी।[10] इस प्रकार का पहला अखिल भारतवर्षीय कवि सम्मेलन १५ अप्रैल १९३३ को सुभद्रा कुमारी चौहान की अध्यक्षता में प्रयाग महिला विद्यापीठ में संपन्न हुआ।[11] वे हिंदी साहित्य में रहस्यवाद की प्रवर्तिका भी मानी जाती हैं।[12] महादेवी बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित थीं। महात्मा गांधी के प्रभाव से उन्होंने जनसेवा का व्रत लेकर झूसी में कार्य किया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी हिस्सा लिया। १९३६ में नैनीताल से २५ किलोमीटर दूर रामगढ़ कसबे के उमागढ़ नामक गाँव में महादेवी वर्मा ने एक बँगला बनवाया था। जिसका नाम उन्होंने मीरा मंदिर रखा था। जितने दिन वे यहाँ रहीं इस छोटे से गाँव की शिक्षा और विकास के लिए काम करती रहीं। विशेष रूप से महिलाओं की शिक्षा और उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए उन्होंने बहुत काम किया। आजकल इस बंगले को महादेवी साहित्य संग्रहालय के नाम से जाना जाता है।[13][14] शृंखला की कड़ियाँ में स्त्रियों की मुक्ति और विकास के लिए उन्होंने जिस साहस व दृढ़ता से आवाज़ उठाई हैं और जिस प्रकार सामाजिक रूढ़ियों की निंदा की है उससे उन्हें महिला मुक्तिवादी भी कहा गया।[15] महिलाओं व शिक्षा के विकास के कार्यों और जनसेवा के कारण उन्हें समाज-सुधारक भी कहा गया है।[16] उनके संपूर्ण गद्य साहित्य में पीड़ा या वेदना के कहीं दर्शन नहीं होते बल्कि अदम्य रचनात्मक रोष समाज में बदलाव की अदम्य आकांक्षा और विकास के प्रति सहज लगाव परिलक्षित होता है।[17]

उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर में बिताया। ११ सितंबर १९८७ को इलाहाबाद में रात ९ बजकर ३० मिनट पर उनका देहांत हो गया।

प्रमुख कृतियाँ

मुख्य लेख: महादेवी का रचना संसार

महादेवी जी कवयित्री होने के साथ-साथ विशिष्ट गद्यकार भी थीं। उनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं।

पन्थ तुम्हारा मंगलमय हो। महादेवी के हस्ताक्षर

महादेवी वर्मा की प्रमुख गद्य रचनाएँ

कविता संग्रह

१. नीहार (१९३०) ५. दीपशिखा (१९४२)
२. रश्मि (१९३२) ६. सप्तपर्णा (अनूदित-१९५९)
३. नीरजा (१९३४) ७. प्रथम आयाम (१९७४)
४. सांध्यगीत (१९३६) ८. अग्निरेखा (१९९०)

श्रीमती महादेवी वर्मा के अन्य अनेक काव्य संकलन भी प्रकाशित हैं, जिनमें उपर्युक्त रचनाओं में से चुने हुए गीत संकलित किये गये हैं, जैसे आत्मिका, परिक्रमा, सन्धिनी (१९६५), यामा (१९३६), गीतपर्व, दीपगीत, स्मारिका, नीलांबरा और आधुनिक कवि महादेवी आदि।

महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य

- **रेखाचित्र:** अतीत के चलचित्र (१९४१) और स्मृति की रेखाएं (१९४३),
- **संस्मरण:** पथ के साथी (१९५६) और मेरा परिवार (१९७२ और संस्मरण (१९८३))
- **चुने हुए भाषणों का संकलन:** संभाषण (१९७४)
- **निबंध:** शृंखला की कड़ियाँ (१९४२), विवेचनात्मक गद्य (१९४२), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (१९६२), संकल्पिता (१९६९)
- **ललित निबंध:** क्षणदा (१९५६)
- **कहानियाँ:** गिल्लू
- **संस्मरण, रेखाचित्र और निबंधों का संग्रह:** हिमालय (१९६३),

अन्य निबंध में संकल्पिता तथा विविध संकलनों में स्मारिका, स्मृति चित्र, संभाषण, संचयन, दृष्टिबोध उल्लेखनीय हैं। वे अपने समय की लोकप्रिय पत्रिका 'चाँद' तथा 'साहित्यकार' मासिक की भी संपादक रहीं। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' और रंगवाणी नाट्य संस्था की भी स्थापना की।

महादेवी वर्मा का बाल साहित्य

महादेवी वर्मा की बाल कविताओं के दो संकलन छपे हैं।

- ठाकुरजी भोले हैं
- आज खरीदेंगे हम ज्वाला

अनुभूतियाँ

महादेवी वर्मा का काव्य अनुभूतियों का काव्य है। उसमें देश, समाज या युग का चित्रांकन नहीं है, बल्कि उसमें कवयित्री की निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी अनुभूतियाँ प्रायः अज्ञात प्रिय के प्रति मौन समर्पण के रूप में हैं। उनका काव्य उनके जीवन काल में आने वाले विविध पड़ावों के समान है। उनमें प्रेम एक प्रमुख तत्व है जिस पर अलौकिकता का आवरण पड़ा हुआ है। इनमें प्रायः सहज मानवीय भावनाओं और आकर्षण के स्थूल संकेत नहीं दिए गए हैं, बल्कि प्रतीकों के द्वारा भावनाओं को व्यक्त किया गया है। कहीं-कहीं स्थूल संकेत दिए गए हैं-

मेरी आहें सोती है इन ओठों की ओटों में,
मेरा सर्वस्व छिपा है इन दीवानी चोटों में।

कवयित्री ने सर्वत्र अपनी प्रणय-भावना का उन्नयन और परिष्कार किया है। इनके प्रेम का आलंबन विराट एवं विशाल है, जो अलौकिक है-

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।
नींद भी मेरी अचल निस्पंद कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत् के प्रथम स्पंदन में,
प्रलय में मेरा पता पद-चिह्न जीवन में।

इन्होंने अन्य छायावादी कवियों की तरह प्रकृति पर सर्वत्र चेतना का आरोप किया है और उसके साथ विविध मधुर संबंधों की कल्पनाएँ की हैं-

रजनी ओढ़े जाती थी !
झिलमिल तारों की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर,
जब रोती थी उजियाली।

दुःख-पीड़ा और विषाद महादेवी वर्मा के काव्य का मूल स्वर है और इन्हें सुख की अपेक्षा दुःख अधिक प्रिय है। परन्तु इनमें विषाद का वह भाव नहीं है जो कर्म शक्ति को कुंठित कर देता हो। इनमें संयम और त्याग है तथा दूसरों का हित करने की प्रबल आकांक्षा है-

मैं नीर भरी दुःख की बदली !
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा कभी न अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी थी कल मिट आज चली।[1]

रेखाचित्रकार

"एक बार मैथिलीशरण गुप्त ने उनकी कर्मठता की प्रशंसा करते हुए पूछा कि आप कभी थकती नहीं। उनका उत्तर था कि होली के दिन जन्मी हूं न, इसीलिए होली का रंग और उसके उल्लास की चमक मेरे चेहरे पर बनी रहती है।"

महादेवी वर्मा एक सफल रेखाचित्रकार, कवयित्री, और विचारक है। उन्होंने कई रेखाचित्र लिखें हैं जिनमें नीलकंठ मोर, घीसा, सोना, गौरा आदि काफ़ी प्रसिद्ध हैं। मानव एक श्रेष्ठ प्राणी होने पर भी पशुओं के प्रति उसका व्यवहार सराहनीय नहीं हैं। उनके द्वारा रचित 'सोना और गौरा' नामक रेखाचित्र में मानव के निष्ठुर व्यवहार पर महादेवी वर्मा ने प्रकाश डाला हैं। पशु-पक्षी भी प्रेम के लिए लालायित रहते हैं और प्रेम दिखाने पर आनंदविभोर हो उठते हैं। बेज़ुबान होने पर भी स्नेह के कई मूक प्रर्दशन होते हैं। अपने असीम आनंद की अभिव्यक्ति सुंदर आँखों के भाव से प्रकट करते हैं। परन्तु मानव अपने स्वार्थ के कारण इन बेज़ुबान जानवरों पर इतना अत्याचार और निर्दय व्यवहार करता है और उन पर कितना ज़ुल्म करता है इसका कोई अंत नहीं। मानव द्वारा इतनी यातना सह कर भी पशु मानव के स्वभाव से अब तक अनजाना है। मानव का यह स्वार्थ अंत में वेदना का कार्य और कारण बन जाता है, इसी बात पर प्रकाश डालना ही महादेवी वर्मा का मुख्य ध्येय है।[15]

समालोचना

मुख्य लेख: महादेवी की काव्यगत विशेषताएँ

आधुनिक गीत काव्य में महादेवी जी का स्थान सर्वोपरि है। उनकी कविता में प्रेम की पीर और भावों की तीव्रता वर्तमान होने के कारण भाव, भाषा और संगीत की जैसी त्रिवेणी उनके गीतों में प्रवाहित होती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। महादेवी के

गीतों की वेदना, प्रणयानुभूति, करुणा और रहस्यवाद काव्यानुरागियों को आकर्षित करते हैं। पर इन रचनाओं की विरोधी आलोचनाएँ सामान्य पाठक को दिग्भ्रमित करती हैं। आलोचकों का एक वर्ग वह है, जो यह मानकर चलते हैं कि महादेवी का काव्य नितान्त वैयक्तिक है। उनकी पीड़ा, वेदना, करुणा, कृत्रिम और बनावटी है।

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मूर्धन्य आलोचकों ने उनकी वेदना और अनुभूतियों की सच्चाई पर प्रश्न चिह्न लगाया है —[घ] दूसरी ओर
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे समीक्षक उनके काव्य को समष्टि परक मानते हैं।[ङ]
- शोमेर ने 'दीप' (नीहार), मधुर मधुर मेरे दीपक जल (नीरजा) और मोम सा तन गल चुका है कविताओं को उद्धृत करते हुए निष्कर्ष निकाला है कि ये कविताएं महादेवी के 'आत्मभक्षी दीप' अभिप्राय को ही व्याख्यायित नहीं करतीं बल्कि उनकी कविता की सामान्य मुद्रा और बुनावट का प्रतिनिधि रूप भी मानी जा सकती हैं।
- सत्यप्रकाश मिश्र छायावाद से संबंधित उनकी शास्त्र मीमांसा के विषय में कहते हैं — "महादेवी ने वैदुष्य युक्त तार्किकता और उदाहरणों के द्वारा छायावाद और रहस्यवाद के वस्तु शिल्प की पूर्ववर्ती काव्य से भिन्नता तथा विशिष्टता ही नहीं बतायी, यह भी बताया कि वह किन अर्थों में मानवीय संवेदन के बदलाव और अभिव्यक्ति के नयेपन का काव्य है। उन्होंने किसी पर भाव साम्य, भावोपहरण आदि का आरोप नहीं लगाया केवल छायावाद के स्वभाव, चरित्र, स्वरूप और विशिष्टता का वर्णन किया।"[18]
- प्रभाकर श्रोत्रिय जैसे मनीषी का मानना है कि जो लोग उन्हें पीड़ा और निराशा की कवयित्री मानते हैं वे यह नहीं जानते कि उस पीड़ा में कितनी आग है जो जीवन के सत्य को उजागर करती है।[च]

यह सच है कि महादेवी का काव्य संसार छायावाद की परिधि में आता है, पर उनके काव्य को उनके युग से एकदम असम्पृक्त करके देखना, उनके साथ अन्याय करना होगा। महादेवी एक सजग रचनाकार हैं। बंगाल के अकाल के समय १९४३ में इन्होंने एक काव्य संकलन प्रकाशित किया था और बंगाल से सम्बंधित "बंग भू शत वंदना" नामक कविता भी लिखी थी। इसी प्रकार चीन के आक्रमण के प्रतिवाद में हिमालय नामक काव्य संग्रह का संपादन किया था। यह संकलन उनके युगबोध का प्रमाण है।

गद्य साहित्य के क्षेत्र में भी उन्होंने कम काम नहीं किया। उनका आलोचना साहित्य उनके काव्य की भांति ही महत्वपूर्ण है। उनके संस्मरण भारतीय जीवन के संस्मरण चित्र हैं।

उन्होंने चित्रकला का काम अधिक नहीं किया फिर भी जलरंगों में 'वॉश' शैली से बनाए गए उनके चित्र धुंधले रंगों और लयपूर्ण रेखाओं का कारण कला के सुंदर नमूने समझे जाते हैं। उन्होंने रेखाचित्र भी बनाए हैं। दाहिनी ओर करीन शोमर की क़िताब के मुखपृष्ठ पर महादेवी द्वारा बनाया गया रेखाचित्र ही रखा गया है। उनके अपने कविता संग्रहों यामा और दीपशिखा में उनके रंगीन चित्रों और रेखांकनों को देखा जा सकता है।

पुरस्कार व सम्मान

डाकटिकट

उन्हें प्रशासनिक, अर्धप्रशासनिक और व्यक्तिगत सभी संस्थाओं से पुरस्कार व सम्मान मिले।

- १९४३ में उन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' एवं 'भारत भारती' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद १९५२ में वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या मनोनीत की गयीं। १९५६ में भारत सरकार ने उनकी साहित्यिक सेवा के लिये 'पद्म भूषण' की उपाधि दी। १९७९ में साहित्य अकादमी की सदस्यता ग्रहण करने वाली वे पहली महिला थीं।[19] 1988 में उन्हें मरणोपरांत भारत सरकार की पद्म विभूषण उपाधि से सम्मानित किया गया।[7]

- सन १९६९ में विक्रम विश्वविद्यालय, १९७७ में कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल, १९८० में दिल्ली विश्वविद्यालय तथा १९८४ में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने उन्हें डी.लिट की उपाधि से सम्मानित किया।
- इससे पूर्व महादेवी वर्मा को 'नीरजा' के लिये १९३४ में 'सक्सेरिया पुरस्कार', १९४२ में 'स्मृति की रेखाएँ' के लिये 'द्विवेदी पदक' प्राप्त हुए। 'यामा' नामक काव्य संकलन के लिये उन्हें भारत का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।[20] वे भारत की ५० सबसे यशस्वी महिलाओं में भी शामिल हैं।[21]
- १९६८ में सुप्रसिद्ध भारतीय फ़िल्मकार मृणाल सेन ने उनके संस्मरण 'वह चीनी भाई'[22] पर एक बांग्ला फ़िल्म का निर्माण किया था जिसका नाम था नील आकाशेर नीचे।[23]
- १६ सितंबर १९९१ को भारत सरकार के डाकतार विभाग ने जयशंकर प्रसाद के साथ उनके सम्मान में २ रुपए का एक युगल टिकट भी जारी किया है।[24]

महादेवी वर्मा का योगदान

महादेवी से जुड़े विशिष्ट स्थल

साहित्य में महादेवी वर्मा का आविर्भाव उस समय हुआ जब खड़ीबोली का आकार परिष्कृत हो रहा था। उन्होंने हिन्दी कविता को बृजभाषा की कोमलता दी, छंदों के नये दौर को गीतों का भंडार दिया और भारतीय दर्शन को वेदना की हार्दिक स्वीकृति दी। इस प्रकार उन्होंने भाषा साहित्य और दर्शन तीनों क्षेत्रों में ऐसा महत्त्वपूर्ण काम किया जिसने आनेवाली एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया। शचीरानी गुर्टू ने भी उनकी कविता को सुसज्जित भाषा का अनुपम उदाहरण माना है।[छ] उन्होंने अपने गीतों की रचना शैली और भाषा में अनोखी लय और सरलता भरी है, साथ ही प्रतीकों और बिंबों का ऐसा सुंदर और स्वाभाविक प्रयोग किया है जो पाठक के मन में चित्र सा खींच देता है।[ज] छायावादी काव्य की समृद्धि में उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। छायावादी काव्य को जहाँ प्रसाद ने प्रकृतितत्त्व दिया, निराला ने उसमें मुक्तछंद की अवतारणा की और पंत ने उसे सुकोमल कला प्रदान की वहाँ छायावाद के कलेवर में प्राण-प्रतिष्ठा करने का गौरव महादेवी जी को ही प्राप्त है। भावात्मकता एवं अनुभूति की गहनता उनके काव्य की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता है। हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव-हिलोरों का ऐसा सजीव और मूर्त अभिव्यंजन ही छायावादी कवियों में उन्हें 'महादेवी' बनाता है।[25] वे हिन्दी बोलने वालों में अपने भाषणों के लिए सम्मान के साथ याद की जाती हैं। उनके भाषण जन सामान्य के प्रति संवेदना और सच्चाई के प्रति दृढ़ता से परिपूर्ण होते थे। वे दिल्ली में १९८३ में आयोजित तीसरे विश्व हिन्दी सम्मेलन के समापन समारोह की मुख्य अतिथि थीं। इस अवसर पर दिये गये उनके भाषण में उनके इस गुण को देखा जा सकता है।[26]

डॉ. सुनील कुमार परीट

यद्यपि महादेवी ने कोई उपन्यास, कहानी या नाटक नहीं लिखा तो भी उनके लेख, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, भूमिकाओं और ललित निबंधों में जो गद्य लिखा है वह श्रेष्ठतम गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।[झ] उसमें जीवन का संपूर्ण वैविध्य समाया है। बिना कल्पना और काव्यरूपों का सहारा लिए कोई रचनाकार गद्य में कितना कुछ अर्जित कर सकता है, यह महादेवी को पढ़कर ही जाना जा सकता है। उनके गद्य में वैचारिक परिपक्वता इतनी है कि वह आज भी प्रासंगिक है।[ञ] समाज सुधार और नारी स्वतंत्रता से संबंधित उनके विचारों में दृढ़ता और विकास का अनुपम सामंजस्य मिलता है। सामाजिक जीवन की गहरी परतों को छूने वाली इतनी तीव्र दृष्टि, नारी जीवन के वैषम्य और शोषण को तीखेपन से आंकने वाली इतनी जागरूक प्रतिभा और निम्न वर्ग के निरीह, साधनहीन प्राणियों के अनूठे चित्र उन्होंने ही पहली बार हिंदी साहित्य को दिये।

मौलिक रचनाकार के अलावा उनका एक रूप सृजनात्मक अनुवादक का भी है जिसके दर्शन उनकी अनुवाद-कृत 'सप्तपर्णा' (१९६०) में होते हैं। अपनी सांस्कृतिक चेतना के सहारे उन्होंने वेद, रामायण, थेरगाथा तथा अश्वघोष, कालिदास, भवभूति एवं जयदेव की कृतियों से तादात्म्य स्थापित करके ३९ चयनित महत्वपूर्ण अंशों का हिन्दी काव्यानुवाद इस कृति में प्रस्तुत किया है। आरंभ में ६१ पृष्ठीय 'अपनी बात' में उन्होंने भारतीय मनीषा और साहित्य की इस अमूल्य धरोहर के संबंध में गहन शोधपूर्ण विमर्ष किया है जो केवल स्त्री-लेखन को ही नहीं हिंदी के समग्र चिंतनपरक और ललित लेखन को समृद्ध करता है।[27]

विशिष्ट स्थान

महादेवी वर्मा छायावाद के कवियों में औरों से भिन्न अपना एक विशिष्ट और निराला स्थान रखती हैं। इस विशिष्टता के दो कारण हैं-

1. एक तो उनका कोमल हृदया नारी होना।
2. अंग्रेजी और बांग्ला के रोमानी और रहस्यवादी काव्य से प्रभावित होना। इन दोनों कारणों से एक ओर तो उन्हें अपने आध्यात्मिक प्रियतम को पुरुष मानकर स्वाभाविक रूप में अपनी स्त्री-जनोचित प्रणयानुभूतियों को निवेदित करने की सुविधा मिली, दूसरी ओर प्राचीन भारतीय साहित्य और दर्शन तथा सन्त युग के रहस्यवादी काव्य के अध्ययन और अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन छायावादी कवियों के काव्य से निकट का परिचय होने के फलस्वरूप उनकी काव्याभिव्यंजना और बौद्धिक चेतना शत-प्रतिशत भारतीय परम्परा के अनुरूप बनी रही। इस तरह उनके काव्य में जहाँ कृष्ण भक्ति काव्य की विरह-भावना गोपियों के माध्यम से नहीं, सीधे अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में प्रकाशित हुई है, वहीं सूफी पुरुष कवियों की भाँति उन्हें परमात्मा को नारी के प्रतीक में प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

सम्मान और पुरस्कार

सन 1955 में महादेवी जी ने इलाहाबाद में 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की और पं. इला चंद्र जोशी के सहयोग से 'साहित्यकार' का संपादन सँभाला। यह इस संस्था का मुखपत्र था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 1952 में वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या मनोनीत की गईं। 1956 में भारत सरकार ने उनकी साहित्यिक सेवा के लिए 'पद्म भूषण' की उपाधि और 1969 में 'विक्रम विश्वविद्यालय' ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि से अलंकृत किया। इससे पूर्व महादेवी वर्मा को 'नीरजा' के लिए 1934 में 'सेकसरिया पुरस्कार', 1942 में 'स्मृति की रेखाओं' के लिए 'द्विवेदी पदक' प्राप्त हुए। 1943 में उन्हें 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' एवं उत्तर प्रदेश सरकार के 'भारत भारती पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। 'यामा' नामक काव्य संकलन के लिए उन्हें भारत का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

पुरस्कार सूची

- 1934 :सेकसरिया पुरस्कार

- 1942 :द्विवेदी पदक
- 1943 :मंगला प्रसाद पुरस्कार
- 1943 :भारत भारती पुरस्कार
- 1956 :पद्म भूषण
- 1979 :साहित्य अकादेमी फेलोशिप
- 1982 :ज्ञानपीठ पुरस्कार
- 1988 :पद्म विभूषण

निधन

महादेवी वर्मा का निधन 11 सितम्बर, 1987, को प्रयाग में हुआ था। महादेवी वर्मा ने निरीह व्यक्तियों की सेवा करने का व्रत ले रखा था। वे बहुधा निकटवर्ती ग्रामीण अंचलों में जाकर ग्रामीण भाई-बहनों की सेवा सुश्रुषा तथा दवा निःशुल्क देने में निरत रहती थी। वास्तव में वे निज नाम के अनुरूप ममतामयी, महीयसी महादेवी थी। भारतीय संस्कृति तथा भारतीय जीवन दर्शन को आत्मसात किया था। उन्होंने भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में कभी समझौता नहीं किया। महादेवी वर्मा ने एक निर्भीक, स्वाभिमाननी भारतीय नारी का जीवन जिया। राष्ट्र भाषा हिन्दी के सम्बन्ध में उनका कथन है ‘‘हिन्दी भाषा के साथ हमारी अस्मिता जुडी हुई है। हमारे देश की संस्कृति और हमारी राष्ट्रीय एकता की हिन्दी भाषा संवाहिका है।’’ [16]

डॉ. सुनील कुमार शर्मा

५. नरेश मेहता

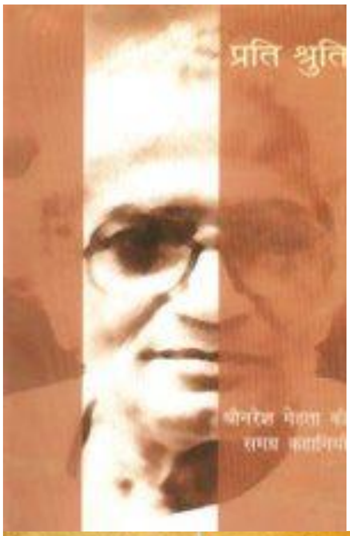
प्रति श्रुति

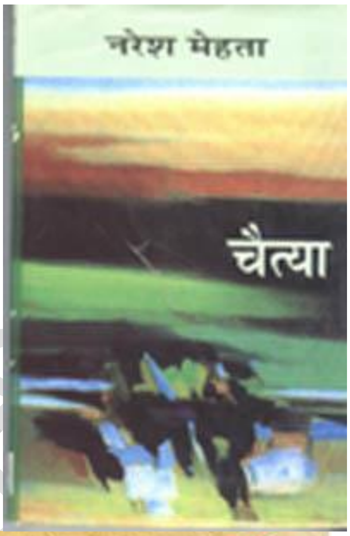
नरेश मेहता
चैत्या

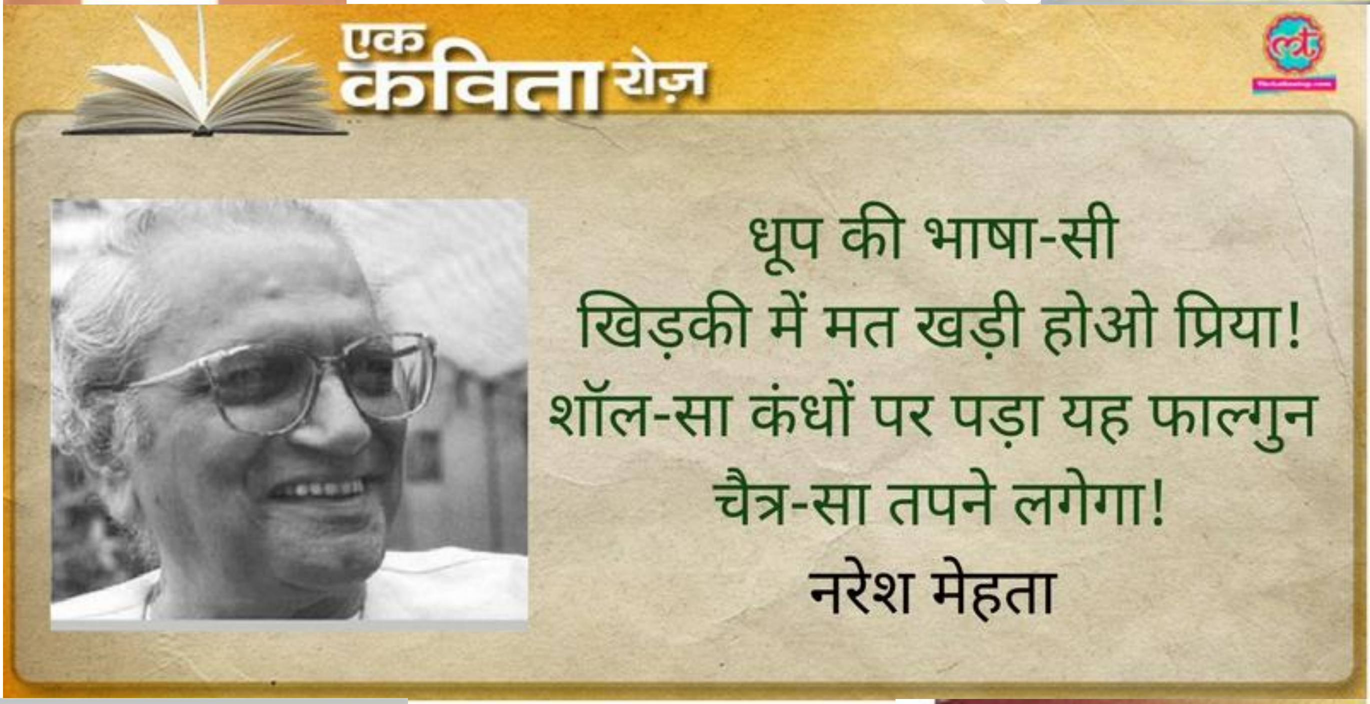
एक कविता रोज़
धूप की भाषा-सी
खिड़की में मत खड़ी होओ प्रिया!
शॉल-सा कंधों पर पड़ा यह फाल्गुन
चैत्र-सा तपने लगेगा!
नरेश मेहता

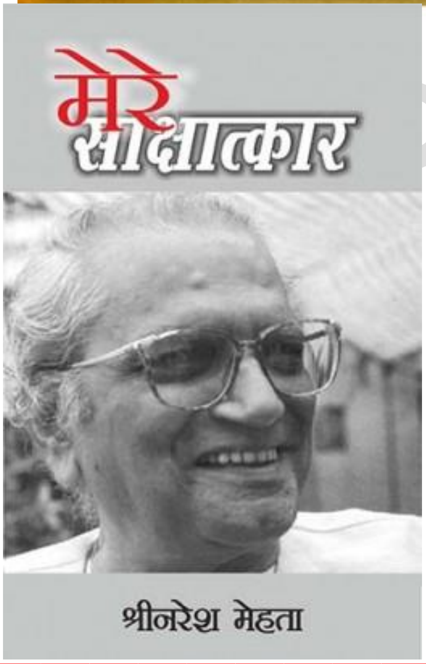
मेरे साक्षात्कार
श्रीनरेश मेहता

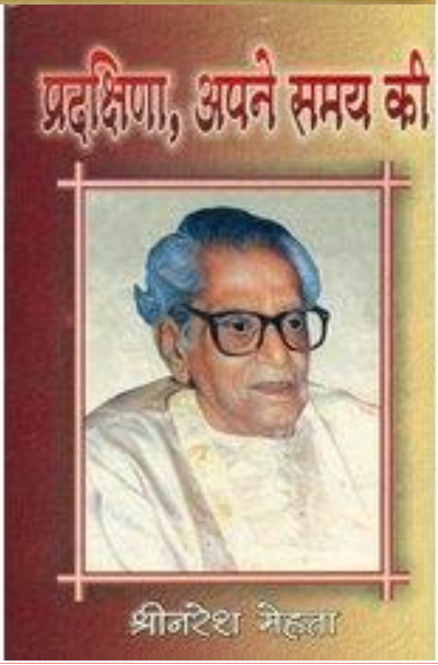
प्रदक्षिणा, अपने समय की
श्रीनरेश मेहता

जन्म:	15 फ़रवरी 1922 शाजापुर, मध्य प्रदेश
मृत्यु:	2000
कार्यक्षेत्र:	
राष्ट्रीयता:	भारतीय

इन्होंने इन्दौर से प्रकाशित 'चौथा संसार' हिन्दी दैनिक का सम्पादन भी किया।

जन्म	15 फ़रवरी 1922
जन्म स्थान	शाजापुर, मध्य प्रदेश

कुछ प्रमुख कृतियाँ

चैत्या, प्रवाद पर्व, अरण्या, पुरुष

विविध

इन्हें 1992 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था । साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मान और पुरस्कार से सम्मानित।।।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी के यशस्वी कवि **श्री नरेश मेहता** उन शीर्षस्थ लेखकों में हैं जो भारतीयता की अपनी गहरी दृष्टि के लिए जाने जाते हैं। नरेश मेहता ने आधुनिक कविता को नयी व्यंजना के साथ नया आयाम दिया। रागात्मकता, संवेदना और उदात्तता उनकी सर्जना के मूल तत्त्व है, जो उन्हें प्रकृति और समूची सृष्टि के प्रति पर्युत्सुक बनाते हैं। आर्ष परम्परा और साहित्य को श्रीनरेश मेहता के काव्य में नयी दृष्टि मिली। साथ ही, प्रचलित साहित्यिक रुझानों से एक तरह की दूरी ने उनकी काव्य-शैली और संरचना को विशिष्टता दी।
श्री नरेश मेहता ने इन्दौर से प्रकाशित चौथा संसार हिन्दी दैनिक का सम्पादन भी किया।

जीवन

नरेश मेहता का जन्म सन् १९२२ ई० में मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र के शाजापुर कस्बे में हुआ। बनारस विश्वविद्यालय से आपने एम०ए० किया। आपने आल इण्डिया रेडियो इलाहाबाद में कार्यक्रम अधिकारी के रूप में कार्य किया।
नरेश मेहता दूसरा सप्तक के प्रमुख कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। सन् २००० ई० में मेहता जी का निधन हो गया। नरेश मेहता को उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए 1992 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। नरेश मेहता का

जन्म सन् 15 फ़रवरी 1922 ई. में मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र के शाजापुर कस्बे में हुआ। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से आपने एम.ए. किया। आपने आल इण्डिया रेडियो इलाहाबाद में कार्यक्रम अधिकारी के रूप में कार्य किया। नरेश मेहता दूसरा सप्तक के प्रमुख कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। सन् 2000 ई. में इनका निधन हो गया।

कृतियाँ

- अरण्या
- उत्तर कथा
- एक समर्पित महिला
- कितना अकेला आकाश
- चैत्या
- दो एकान्त
- धूमकेतुः एक श्रुति
- पुरुष
- प्रति श्रुति
- प्रवाद पर्व
- बोलने दो चीड़ को
- यह पथ बन्धु था
- हम अनिकेतन

साहित्यिक परिचय

नरेश मेहता की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली है। शिल्प और अभिव्यंजना के स्तर पर उसमें ताजगी और नयापन है। उन्होंने सीधे, सरल बिम्बों का प्रयोग भी किया है। नरेश मेहता की भाषा विषयानुकूल, भावपूर्ण तथा प्रवाहमयी है। उनके काव्य में रूपक, मानवीकरण, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानों के साथ-साथ परंपरागत और नवीन छंदों का प्रयोग किया है। रागात्मकता, संवेदना और उदात्तता उनकी सर्जना के मूल तत्त्व है, जो उन्हें प्रकृति और समूची सृष्टि के प्रति पर्युत्सुक बनाते हैं। आर्य परम्परा और साहित्य को नरेश मेहता के काव्य में नयी दृष्टि मिली। साथ ही, प्रचलित साहित्यिक रुझानों से एक तरह की दूरी ने उनकी काव्य-शैली और संरचना को विशिष्टता दी।

सम्मान और पुरस्कार

25 फरवरी 1922 को मालवा के शाजापुर नामक कस्बे में जन्मे नरेश मेहता का नाम उनके पिता बिहारीलाल शुक्ल ने पूर्णशंकर शुक्ल रखा था. 'मेहता' तो उन्हें उपाधि स्वरूप मिला.

- ज्ञानपीठ पुरस्कार (1992)
- साहित्य अकादमी पुरस्कार (1988)

भाषा शैली

नरेश मेहता की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली है। शिल्प और अभिव्यंजना के स्तर पर उसमें ताजगी और नयापन है। उन्होंने सीधे, सरल बिम्बों का प्रयोग भी किया है। मेहता जी की भाषा विषयानुकूल, भावपूर्ण तथा प्रवाहमयी है। उनके

डॉ. सुनील कुमार परीट

काव्य में रूपक, मानवीकरण, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। नवीन उपमानो के साथ-साथ परंपरागत और नवीन छंदों का प्रयोग मेहता जी ने किया है।

मृत्तिका

मैं तो मात्र मृत्तिका हूँ -
जब तुम
मुझे पैरों से रौंदते हो
तथा हल के फाल से विदीर्ण करते हो
तब मैं -
धन-धान्य बनकर मातृरूपा हो जाती हूँ।
जब तुम
मुझे हाथों से स्पर्श करते हो
तथा चाक पर चढ़ाकर घुमाने लगते हो
तब मैं -
कुंभ और कलश बनकर
जल लाती तुम्हारी अंतरंग प्रिया हो जाती हूँ।

जब तुम मुझे मेले में मेरे खिलौने रूप पर
आकर्षित होकर मचलने लगते हो
तब मैं -
तुम्हारे शिशु हाथों में पहुंच प्रजारूपा हो जाती हूँ।

पर जब भी तुम
अपने पुरुषार्थ-पराजित स्वत्व से मुझे पुकारते हो
तब मैं -
अपने ग्राम्य देवत्व के साथ चिन्मयी शक्ति हो जाती हूँ
(प्रतिमा बन तुम्हारी आराध्या हो जाती हूं)
विश्वास करो
यह सबसे बड़ा देवत्व है, कि -
तुम पुरुषार्थ करते मनुष्य हो
और मैं स्वरूप पाती मृत्तिका।

(नरेश मेहता)

आधुनिक कविता

नरेश मेहता ने आधुनिक कविता को नयी व्यंजना के साथ नया आयाम दिया। रागात्मकता, संवेदना और उदात्तता उनकी सर्जना के मूल तत्त्व है, जो उन्हें प्रकृति और समूची सृष्टि के प्रति पर्युत्सुक बनाते हैं। आर्ष परम्परा और साहित्य को श्रीनरेश मेहता के काव्य में नयी दृष्टि मिली। साथ ही, प्रचलित साहित्यिक रुझानों से एक तरह की दूरी ने उनकी काव्य-शैली और संरचना को विशिष्टता दी।

कृतियाँ

अरण्या, उत्तर कथा, एक समर्पित महिला, कितना अकेला आकाश
चैत्या, दो एकान्त, धूमकेतुः एक श्रुति, पुरुष, प्रति श्रुति
प्रवाद पर्व, बोलने दो चीड़ को, यह पथ बन्धु था, हम अनिकेतन
निधन
22 नवंबर 2000
नरेश मेहता ने अपने प्रबंध काव्यों के द्वारा मिथकीय कथा प्रसंगों को नये अर्थ-संदर्भों में अभिव्यक्त किया है. उन्होंने स्वयं लिखा है, ''किसी भी देश की या जाति की जातीयता उसकी मिथकता है. " 'संशय की एक रात' में कवि मेहता मिथक के सहारे, रामायण की एक घटना, समकालीन समाज के व्यापक आधुनिक बोध को पाठकों के समक्ष रखा है. वे कहते हैं-

सामने वाला यदि आवेग में
पशु हो गया हो
तो विवेक के रहते
प्रतीक्षा करो
उसके पुनः मनुष्य होने की ।

कवि विवेकहीन मनुष्य को पशु कहते है और टूटे मानव-मूल्यों का पुनःनिर्माण पर आस्था रखते हैं. राजनीति की नृशंसता पर कवि कहते हैं-

यह सत्ताधारी
यह राज्य व्यवस्था
एक दिन
प्रत्येक व्यक्ति के भीतर
विचारशून्यता का
अन्धा कारागार निर्मित कर दें ।

राजनीति आज इतनी कलुषित बन गयी है कि आज देश में सत्ता लोलुप नेताओं के बीच जो सत्ता संघर्ष चलता है, उससे पीड़ित होने वाली आम जनता को शांति का कोई विकल्प नहीं मिलता. वे कहते हैं-

प्रत्येक व्यवस्था के पास
अपने बधनख होते हैं
अकेला दुर्योधन ही
दुर्विनीत नहीं था
व्यवस्था की मुकुट धारण करते ही
किसी भी व्यक्ति का
मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है ।

कवि नरेश राजसत्ता से ज्यादा महत्व जनसत्ता को मान्यता देते हुए कहते हैं-

इतिहास
खड़ग से नहीं
मानवीय उदात्तता से लिखा जाना चाहिए
हमारे इन राजसी कानों तक
कभी किसी अनाथ
नारी की
असहाय अवमानना आयी है ?
राज्य की यह आतुरता
कर्मठता
केवल सीता
या हमारे ही लिए क्यों ?

सत्ताधारियों द्वारा समस्त सत्ता को केवल अपने ही अभिषेक के लिए सुरक्षित रखना तथा अपनी सुरक्षा के लिए आम जनता की बलि देना, पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कवि कहते हैं-

सत्ता के गोमुख पर बैठकर
उसके सारे शक्ति जलों को
अपने ही अभिषेक के लिए
सुरक्षित रखना
वह कौन सा दर्शन है लक्ष्मण ?

निसंदेह राजनीति की यही नीति अपनी पूरी बर्बरता और भयानकता के साथ समस्त देश को लील रही है. कवि का मानना है कि मनुष्य का भाषाहीन हो जाना सृष्टि का ईश्वरहीन हो जाना है.

मानवीय स्वातंत्रय
मानवीय भाषा और
मानवीय अभिव्यक्ति के
प्रति इतिहास का सामना
वैसे ही
मानवीय प्रति गरिमा के साथ
करना होगा लक्ष्मण
प्रति इतिहास को इतिहास से नहीं
विनय से स्वीकारना होगा ।

मनुष्य में ईश्वर का वास को मानते हुए कवि कहते हैं-

साधारणता के इस नारायण को
आर्यपुत्र
न्याय के प्रतिनारायण की अपेक्षा है
और मुझे भी !!

डॉ. सुनील कुमार परीट

६. निर्मल वर्मा

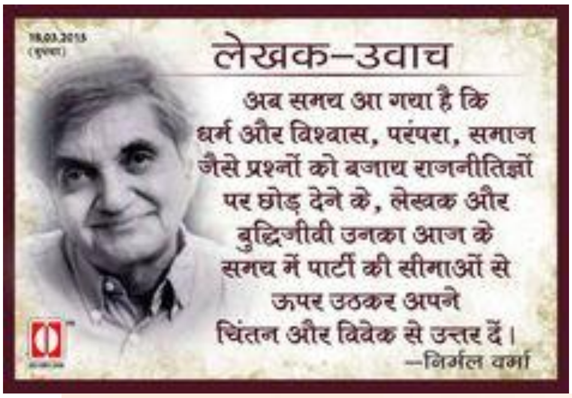
लेखक–उवाच
अब समय आ गया है कि धर्म और विश्वास, परंपरा, समाज जैसे प्रश्नों को बजाय राजनीतिज्ञों पर छोड़ देने के, लेखक और बुद्धिजीवी उनका आज के समय में पार्टी की सीमाओं से ऊपर उठकर अपने चिंतन और विवेक से उत्तर दें।
–निर्मल वर्मा

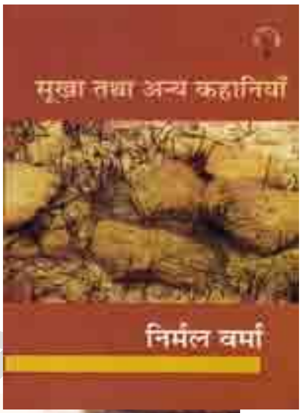
सूखा तथा अन्य कहानियाँ
निर्मल वर्मा

निर्मल वर्मा : आधुनिक कहानीकार
जन्म : 3 अप्रैल 1929 ,शिमला
निधन : 25 अक्टूबर 2005
निर्मल वर्मा ने कहानी आधुनिकता के समावेश के साथ रची है जो शिल्प और अभिव्यक्ति की दृष्टि से बेजोड़ समझी जाती है.
वे चेकोस्लोवाकिया के प्राच्य विद्या संस्थान में सात वर्ष तक रहे.
उनकी कहानी 'माया दर्पण' पर 1973 में फ़िल्म बनी जिसे सर्वश्रेष्ठ हिन्दी फ़िल्म का सम्मान मिला.
प्रमुख कृतियां :
परिंदे (1959)
चीड़ों पर चांदनी (1963)
बीच बहस में (1973)
लाल टीन की छत (1974)
शब्द और स्मृति (1976)
सम्मान :
पद्म भूषण, साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार.
samaypatrika.com
समय पत्रिका

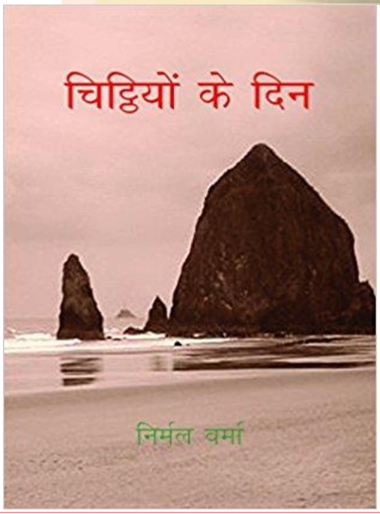
चिट्ठियों के दिन
निर्मल वर्मा

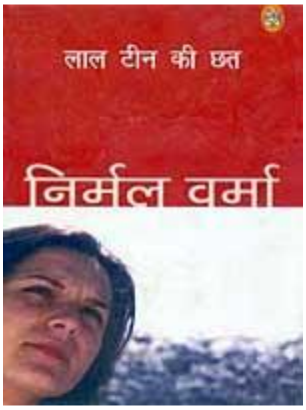
लाल टीन की छत
निर्मल वर्मा

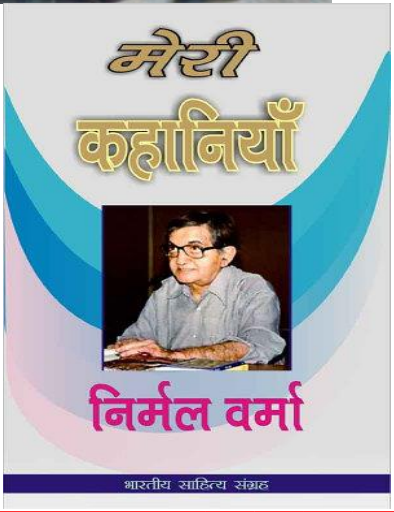
मेरी
कहानियाँ
निर्मल वर्मा
भारतीय साहित्य संग्रह

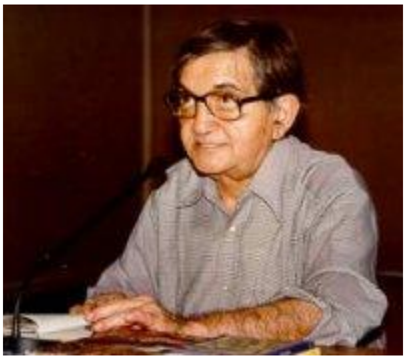

पूरा नाम	निर्मल वर्मा
जन्म	3 अप्रॅल, 1929
जन्म भूमि	शिमला
मृत्यु	25 अक्तूबर, 2005
मृत्यु स्थान	दिल्ली
अभिभावक	पिता- नंद कुमार वर्मा
कर्म-क्षेत्र	साहित्य
मुख्य रचनाएँ	'रात का रिपोर्टर', 'एक चिथड़ा सुख', 'लाल टीन की छत', 'वे दिन' आदि
भाषा	हिन्दी
विद्यालय	सेंट स्टीफेंस कॉलेज, दिल्ली
शिक्षा	एम.ए. (इतिहास)
पुरस्कार-उपाधि	पद्म भूषण, साहित्य अकादमी पुरस्कार (1985), ज्ञानपीठ पुरस्कार (1999)
नागरिकता	भारतीय
अन्य जानकारी	निर्मल वर्मा इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ़ एडवांस स्टडीज़ (शिमला) के फेलो (1973), निराला सृजनपीठ भोपाल (1981-83) और यशपाल सृजनपीठ (शिमला) के अध्यक्ष रहे।

डॉ सुनील कुमार परीट

इन्हें भी देखें	कवि सूची

निर्मल वर्मा (३ अप्रैल १९२९- २५ अक्तूबर २००५) हिन्दी के आधुनिक कथाकारों में एक मूर्धन्य कथाकार और पत्रकार थे। शिमला में जन्मे निर्मल वर्मा को मूर्तिदेवी पुरस्कार (१९९५), साहित्य अकादमी पुरस्कार (१९८५) उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान पुरस्कार और ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। **परिंदे** (१९५८) से प्रसिद्धि पाने वाले निर्मल वर्मा की कहानियां अभिव्यक्ति और शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ समझी जाती हैं। ब्रिटिश भारत सरकार के रक्षा विभाग में एक उच्च पदाधिकारी श्री नंद कुमार वर्मा के घर जन्म लेने वाले आठ भाई बहनों में से पांचवें निर्मल वर्मा की संवेदनात्मक बुनावट पर हिमांचल की पहाड़ी छायाएं दूर तक पहचानी जा सकती हैं। हिन्दी कहानी में आधुनिक-बोध लाने वाले कहानीकारों में निर्मल वर्मा का अग्रणी स्थान है। उन्होंने कम लिखा है परंतु जितना लिखा है उतने से ही वे बहुत ख्याति पाने में सफल हुए हैं। उन्होंने कहानी की प्रचलित कला में तो संशोधन किया ही, प्रत्यक्ष यथार्थ को भेदकर उसके भीतर पहुंचने का भी प्रयत्न किया है।[1] हिन्दी के महान साहित्यकारों में से अज्ञेय और निर्मल वर्मा जैसे कुछ ही साहित्यकार ऐसे रहे हैं जिन्होंने अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर भारतीय और पश्चिम की संस्कृतियों के अंतर्द्वन्द्व पर गहनता एवं व्यापकता से विचार किया है।[2]

इनका जन्म ३ अप्रैल १९२९ को शिमला में हुआ था।[3] दिल्ली के सेंट स्टीफेंस कालेज से इतिहास में एम ए करने के बाद कुछ दिनों तक उन्होंने अध्यापन किया। इन्हें वर्ष १९५९ से १९७२ तक यूरोप में प्रवास करने का अवसर मिला था और इस दौरान उन्होंने लगभग समूचे यूरोप की यात्रा करके वहाँ की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का नजदीक से परिचय प्राप्त किया था।[2] १९५९ से प्राग (चेकोस्लोवाकिया) के प्राच्य विद्या संस्थान में सात वर्ष तक रहे। उसके बाद लंदन में रहते हुए टाइम्स ऑफ इंडिया के लिये सांस्कृतिक रिपोर्टिंग की। १९७२ में स्वदेश लौटे। १९७७ में आयोवा विश्व विद्यालय (अमरीका) के इंटरनेशनल राइटर्स प्रोग्राम में हिस्सेदारी की। उनकी कहानी **माया दर्पण** पर फिल्म बनी जिसे १९७३ का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी फिल्म का पुरस्कार प्राप्त हुआ। वे इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ एडवांस स्टडीज़ (शिमला) के फेलो (१९७३), निराला सृजनपीठ भोपाल (१९८१-८३) और यशपाल सृजनपीठ (शिमला) के अध्यक्ष रहे (१९८९)। १९८८ में इंगलैंड के प्रकाशक रीडर्स इंटरनेशनल द्वारा उनकी कहानियों का संग्रह द **वर्ल्ड एल्सव्हेयर** प्रकाशित। इसी समय बीबीसी द्वार उनपर डाक्यूमेंट्री फिल्म प्रसारित हुई थी। फेफड़े की बीमारी से जूझने के बाद ७६ वर्ष की अवस्था में २६ अक्तूबर, २००५ को दिल्ली में उनका निधन हो गया।[3]

निर्मल वर्मा (अंग्रेज़ी:Nirmal Verma) (जन्म: 3 अप्रॅल 1929 - मृत्यु: 25 अक्तूबर 2005) हिन्दी के आधुनिक साहित्यकारों में से एक थे। हिन्दी साहित्य में नई कहानी आंदोलन के प्रमुख ध्वजवाहक निर्मल वर्मा का कहानी में आधुनिकता का बोध लाने वाले कहानीकारों में अग्रणी स्थान है।

जीवन परिचय

निर्मल वर्मा का जन्म तीन अप्रॅल 1929 को शिमला में हुआ था। ब्रिटिश भारत सरकार के रक्षा विभाग में एक उच्च पदाधिकारी श्री नंद कुमार वर्मा के घर जन्म लेने वाले आठ भाई बहनों में से पांचवें निर्मल वर्मा की संवेदनात्मक बुनावट पर हिमांचल की पहाड़ी छायाएं दूर तक पहचानी जा सकती हैं। उन्होंने कम लिखा है परंतु जितना लिखा है उतने से ही वे बहुत ख्याति पाने में सफल हुए हैं। उन्होंने कहानी की प्रचलित कला में तो संशोधन किया ही, प्रत्यक्ष यथार्थ को भेदकर उसके भीतर पहुंचने का भी प्रयत्न किया है। हिन्दी के महान् साहित्यकारों में से अज्ञेय और निर्मल वर्मा जैसे कुछ ही साहित्यकार ऐसे रहे हैं जिन्होंने अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर भारतीय और पश्चिम की संस्कृतियों के अंतर्द्वन्द्व पर गहनता एवं व्यापकता से विचार किया।[1] दिल्ली के सेंट स्टीफेंस कॉलेज से इतिहास में

एम.ए. करने के बाद उन्होंने कुछ दिन तक अध्यापन किया। 1959 से 1972 के बीच उन्हें यूरोप प्रवास का अवसर मिला। वह प्राग विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या संस्थान में सात साल तक रहे। उनकी कहानी 'माया दर्पण' पर 1973 में फ़िल्म बनी जिसे सर्वश्रेष्ठ हिन्दी फ़िल्म का पुरस्कार मिला।[2]

ब्रिटिश भारत सरकार के रक्षा विभाग में एक उच्च पदाधिकारी श्री नंद कुमार वर्मा के घर जन्म लेने वाले आठ भाई बहनों में से पाँचवें निर्मल वर्मा की संवेदनात्मक बुनावट पर हिमांचल की पहाड़ी छायाएं दूर तक पहचानी जा सकती हैं।

दिल्ली के सेंट स्टीवेंसन कालेज से इतिहास में एम ए करने के बाद कुछ दिनों तक उन्होंने अध्यापन किया। १९५९ से प्राग (चेकोस्लोवाकिया) के प्राच्य विद्या संस्थान में सात वर्ष तक रहे। उसके बाद लंदन में रहते हुए टाइम्स आफ इंडिया के लिए सांस्कृतिक रिपोर्टिंग की। १९७२ में स्वदेश लौटे। १९७७ में आयोवा विश्व विद्यालय (अमरीका) के इंटरनेशनल राइटर्स प्रोग्राम में हिस्सेदारी की। उनकी कहानी माया दर्पण पर फिल्म बनी जिसे १९७३ का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी फिल्म का पुरस्कार प्राप्त हुआ।

कार्यक्षेत्र

वे इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ़ एडवांस स्टडीज़ (शिमला) के फेलो (1973), निराला सृजनपीठ भोपाल (1981-83) और यशपाल सृजनपीठ (शिमला) के अध्यक्ष रहे। 1988 में इंग्लैंड के प्रकाशक रीडर्स इंटरनेशनल द्वारा उनकी कहानियों का संग्रह 'द वर्ल्ड एल्सव्हेयर' प्रकाशित हुआ। इसी समय बीबीसी द्वार उन पर एक डाक्यूमेंट्री फ़िल्म भी प्रसारित हुई।[1]

कृतियाँ

'रात का रिपोर्टर', 'एक चिथड़ा सुख', 'लाल टीन की छत' और 'वे दिन' निर्मल वर्मा के चर्चित उपन्यास है। उनका अंतिम उपन्यास 'अंतिम अरण्य' 1990 में प्रकाशित हुआ। उनकी सौ से अधिक कहानियाँ कई कहानी संग्रहों में प्रकाशित हुई। 1958 में 'परिंदे' कहानी से प्रसिद्धी पाने वाले निर्मल वर्मा ने 'धुंध से उठती धुन' और 'चीड़ों पर चाँदनी' यात्रा वृतांत भी लिखे, जिसने उनकी लेखन विधा को नये मायने दिए।[2]

निर्मल वर्मा ने अनेक कहानियाँ, उपन्यास, यात्रा वृतांत, संस्मरण आदि लिखे हैं। उनकी प्रकाशित पुस्तकें हैं[3]:

उपन्यास

1. वे दिन (1964)
2. लाल टीन की छत (1974)
3. एक चिथड़ा सुख (1979)
4. रात का रिपोर्टर (1989)
5. अंतिम अरण्य (2000)

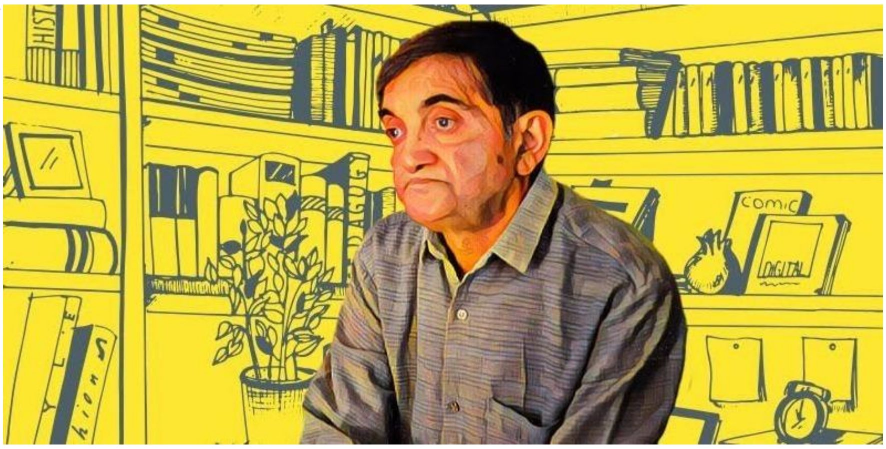

कहानी संग्रह

1. परिंदे (1959)
2. जलती झाड़ी (1965)
3. पिछली गर्मियों में (1968)
4. बीच बहस में (1973)
5. मेरी प्रिय कहानियाँ (1973)
6. प्रतिनिधि कहानियाँ (1988)
7. कव्वे और काला पानी (1983)
8. सूखा तथा अन्य कहानियाँ (1995)
9. संपूर्ण कहानियाँ (2005)

यात्रा-संस्मरण व डायरी

डॉ. सुनील कुमार

1. चीड़ों पर चाँदनी (1963)
2. हर बारिश में (1970)
3. धुँध से उठती धुन (1977)

निबंध

1. शब्द और स्मृति (1976)
2. कला का जोखिम (1981)
3. ढलान से उतरते हुए (1985)
4. भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र (1991)
5. इतिहास स्मृति आकांक्षा (1991)
6. शताब्दी के ढलते वर्षों में (1995)
7. अन्त और आरम्भ (2001)

नाटक

1. तीन एकान्त (1976)

संचयन

1. दूसरी दुनिया (1978)
2. परिवर्द्धित नया संस्करण (2005)

अनुवाद

1. कुप्रिन की कहानियाँ (1955)
2. रोमियो जूलियट और अँधेरा (1962)
3. झोंपड़ीवाले (1966)
4. बाहर और परे (1967)
5. बचपन (1970)
6. आर यू आर (1972)

योगदान

प्रेमचंद और उनके समकक्ष साहित्यकारों जैसे भगवतीचरण वर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु आदि के बाद साहित्यिक परिदृश्य एकदम से बदल गया। विशेषकर साठ-सत्तर के दशक के दौरान और उसके बाद बहुत कम लेखक हुए जिन्हें कला की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में अभूतपूर्व योगदान के लिये याद किया जायेगा। संख्या में गुणवत्ता के सापेक्ष आनुपातिक वृद्धि ही हुई। इसके कारणों में ये प्रमुख रहे। हिन्दी का सरकारीकरण, नये वादों-विवादों का उदय, उपभोक्तावाद का वर्चस्व आदि। उनके जैसे साहित्यकार से उनके समकालीन और बाद के साहित्यकार जितना कुछ सीख सकते थे और अपने योगदान में अभिवृद्धि कर सकते थे उतना वे नहीं कर पाये। उन्हें जितना मान दिया गया उतना ही उनका अनदेखा भी हुआ। जितनी चर्चा उनकी कृतियों पर होनी चाहिये थी शायद वह हुई ही नहीं। वे उन चुने हुए व्यक्तियों में थे जिन्होंने साहित्य और कला की निष्काम साधना की और जीवनपर्यन्त अपने मूल्यों का निर्वाह किया।

सम्मान और पुरस्कार

- 1999 में साहित्य में देश का सर्वोच्च सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार दिया गया।

डॉ. मृणाल कुमार परीट

- 2002 में भारत सरकार की ओर से साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए पद्म भूषण दिया गया[2]।
- निर्मल वर्मा को मूर्तिदेवी पुरस्कार (1995)
- साहित्य अकादमी पुरस्कार (1984)
- उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।
- **निर्मल वर्मा** वे **लेखक** हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नई और एक **अलग ही दुनिया** गढ़ दी। हम जब उन्हें पढ़ते हैं तो उनके साथ उनकी रचनाओं में सफर करने लगते हैं। रोजमर्रा की घटनाओं, मानवीय आदतों, कमियों-खूबियों को उन्होंने उतने ही सहज रूप में लिखा है, जितना बाकी की दुनिया ने उसे **कठिन** बना रखा है। निर्मल वर्मा खुद भी मस्त रहते थे और कोशिश करते थे कि आस-पास सब मगन रहें, जीते रहें। निर्मल वर्मा जिंदगी के नैराश्य से हाथ छुड़ाकर भागन में यकीन नहीं रखते, बल्कि उन्होंने कालेपन को बिल्कुल अपना लिया था, अपना हिस्सा बना लिया था। नतीजन वे **नैराश्य** का भी आनंद लेते थे।
- निर्मल वर्मा ने दिल्ली विश्वविद्यालय के **सेंट स्टीफेंस कालेज** से **इतिहास** में **एम.ए.** करने के बाद पढ़ाना शुरू कर दिया था। **चेकोस्लोवाकिया** के प्राच्य-विद्या संस्थान प्राग के निमंत्रण पर 1959 में वहां चले गए और चेक उपन्यासों तथा कहानियों का हिंदी अनुवाद किया। इस दरम्यान उनकी लेखनी से **कैरेल चापेक**, **जीरी फ्राईड**, **जोसेफ स्कोवर्स्की** और **मिलान कुंदेरा** जैसे लेखकों की कृतियों का **हिंदी अनुवाद** सामने आया। निर्मल वर्मा को हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों का ज्ञान था। लेकिन निर्मल वर्मा का मुख्य योगदान हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में माना जाता है। 1970 तक निर्मल यूरोप प्रवास पर रहे। यूरोप के पूर्वी-पश्चिमी हिस्सों में वो खूब घूमे और वहां रहकर उन्होंने आधुनिक यूरोपीय समाज का गहरा अध्ययन किया। इस अध्ययन का असर उनके भारतीय सभ्यता और धर्म संबंधी चिंतन पर भी हुआ। यूरोप से वापसी के बाद निर्मल वर्मा **इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ एडवान्स्ड स्टडीज**, शिमला में फेलो चयनित हुए। यहां रहते हुए उन्होंने '**साहित्य में पौराणिक चेतना**' विषय पर रिसर्च की।
- ***एक औरत का जिस्म, पाब्लो नेरूदा की कविताएं***
- 1977 में निर्मल वर्मा को **अयोवा यूनिवर्सिटी अमेरिका** से **इंटरनेशनल राईटिंग प्रोग्राम** में शामिल होने का बुलावा मिला। 1980 में हंगरी, सोवियत संघ, जर्मनी और फ्रांस गए। भारतीय लेखकों के प्रतिनिधि मंडल में वे भी बतौर सदस्य थे। 1987 में **फेस्टिवल ऑफ़ इंडिया कमिटी** के निमंत्रण पर **शिकागो विश्वविद्यालय** में आयोजित '**भारतीय साहित्य**' विषयक संगोष्ठी में भाग लिया। 1988 में हाईडेलबर्ग यूनिवर्सिटी में उन्होंने अज्ञेय स्मारक व्याख्यान दिया।
- साहित्य से सम्बंधित शायद ही कोई भारतीय पुरस्कार होगा, जो निर्मल वर्मा को न मिला हो। 'कव्वे और काला पानी' के लिए उन्हें 1985 में साहित्य अकादमी सम्मान प्राप्त हुआ। 1995 में उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का '**राममनोहर लोहिया अतिविशिष्ट सम्मान**' मिला। 1995 में भारतीय ज्ञानपीठ की तरफ से '**मूर्तिदेवी पुरस्कार**' भी उन्हें मिला। 2000 में उन्हें '**भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार**' प्राप्त हुआ। साथ ही वे भारत सरकार की तरफ से **पद्मभूषण** से भी नवाजे गए।

निधन

निर्मल वर्मा का निधन 25 अक्टूबर 2005 को नई दिल्ली में हुआ।
अपनी गंभीर, भावपूर्ण और अवसाद से भरी कहानियों के लिए जाने-जाने वाले निर्मल वर्मा को आधुनिक हिंदी कहानी के सबसे प्रतिष्ठित नामों में गिना जाता रहा है, उनके लेखन की शैली सबसे अलग और पूरी तरह निजी थी। निर्मल वर्मा को भारत में साहित्य का शीर्ष सम्मान ज्ञानपीठ १९९९ में दिया गया। 'रात का रिपोर्टर', 'एक चिथड़ा सुख', 'लाल टीन की छत' और 'वे दिन' उनके बहुचर्चित उपन्यास हैं। उनका अंतिम उपन्यास १९९० में प्रकाशित हुआ था--अंतिम अरण्य। उनकी एक सौ से अधिक कहानियाँ कई संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं जिनमें 'परिंदे', 'कौवे और काला पानी', 'बीच बहस में', 'जलती झाड़ी' आदि प्रमुख हैं। 'धुंध से उठती धुन' और 'चीड़ों पर चाँदनी' उनके यात्रा वृतांत हैं जिन्होंने लेखन की इस विधा को नए मायने दिए हैं। निर्मल वर्मा को सन २००२ में भारत सरकार द्वारा साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।
अपने निधन के समय निर्मल वर्मा भारत सरकार द्वारा औपचारिक रूप से नोबेल पुरस्कार के लिए नामित थे !== सन्दर्भ ==

1.
- वर्मा, निर्मल (२०१०). *मेरी प्रिय कहानियाँ*. दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज़. प॰ प्रस्तावना.
- • निर्मल वर्मा के चिंतन में भारत और यूरोप का द्वन्द्। सृजन शिल्पी। ७ अक्टूबर २००६

3. • साहित्यकार निर्मल वर्मा का निधन। बीबीसी-हिन्दी। २६ अक्टूबर २००५

उपन्यास
वे दिन एक चिथड़ा सुख लाल टीन की छत रात का रिपोर्टर अंतिम अरण्य
कहानी संग्रह
परिंदे जलती झड़ी पिछली गर्मियों में कव्वे और काला पानी सूखा और अन्य कहानियां
निधन २५ अक्तूबर २००५
प्रमुख कृतियाँ -
उपन्यास - अंतिम अरण्य, रात का रिपोर्टर, एक चिथड़ा सुख, लाल टीन की छत, वे दिन।
कहानी संग्रह - परिंदे, कौवे और काला पानी, सूखा तथा अन्य कहानियाँ, बीच बहस में, जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में।
संस्मरण यात्रा वृतांत - धुंध से उठती धुन, चीड़ों पर चाँदनी।
नाटक - तीन एकांत
निबंध - भारत और यूरोप, प्रतिभूति के क्षेत्र, शताब्दी के ढलते वर्षों से, कला का जोखिम, शब्द और स्मृति, ढलान से उतरते हुए।

डॉ. सुनील कुमार परीट

७. कुँवर नारायण

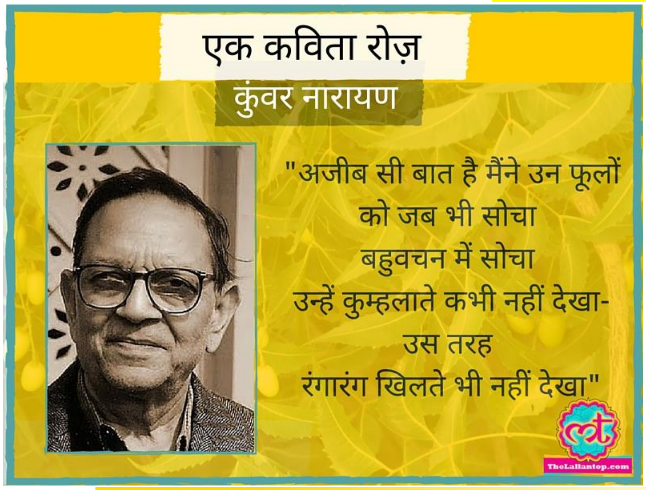

एक कविता रोज़
कुंवर नारायण
"अजीब सी बात है मैंने उन फूलों
को जब भी सोचा
बहुवचन में सोचा
उन्हें कुम्हलाते कभी नहीं देखा-
उस तरह
रंगारंग खिलते भी नहीं देखा"

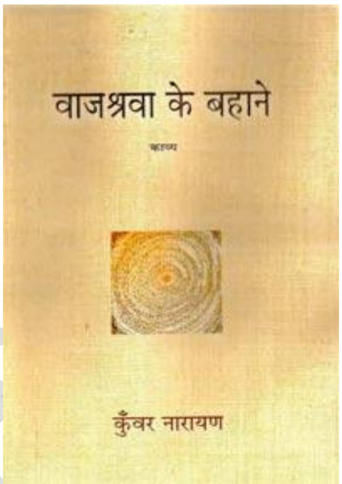

वाजश्रवा के बहाने
कुँवर नारायण

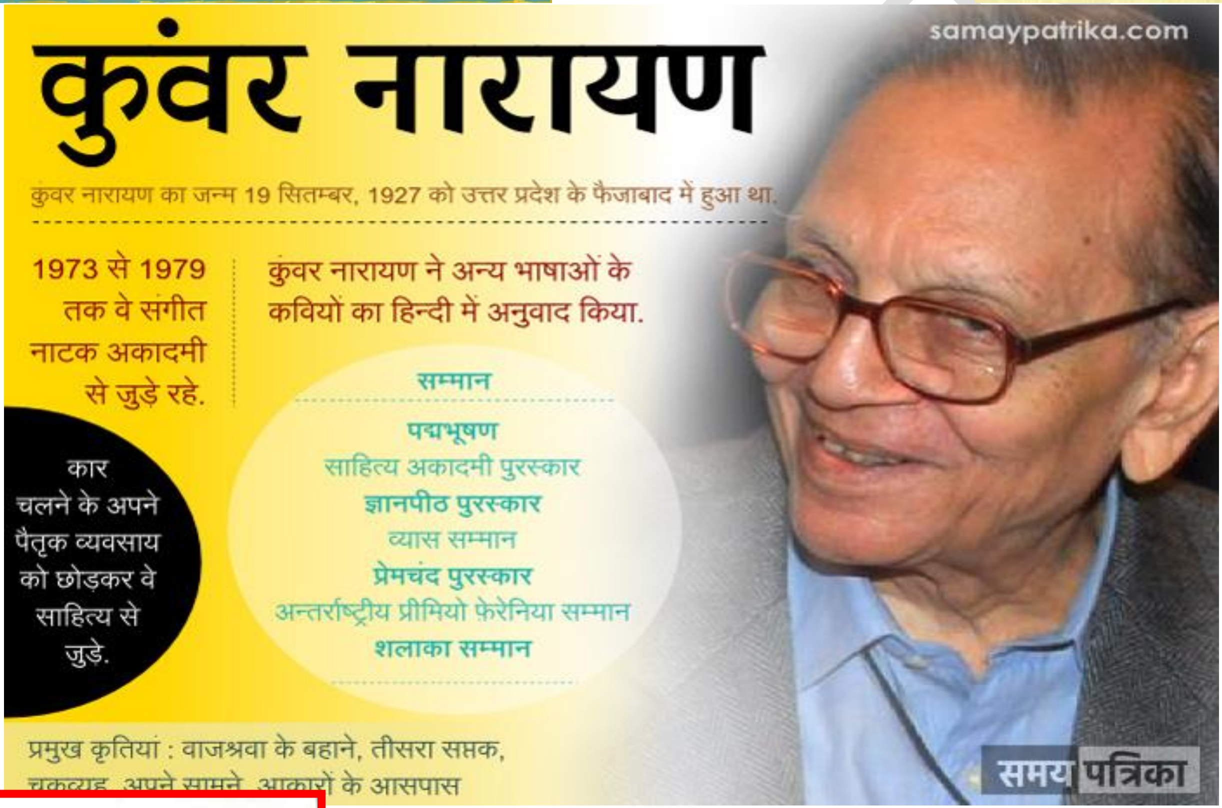

samaypatrika.com
कुंवर नारायण
कुंवर नारायण का जन्म 19 सितम्बर, 1927 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद में हुआ था.
1973 से 1979 तक वे संगीत नाटक अकादमी से जुड़े रहे.
कुंवर नारायण ने अन्य भाषाओं के कवियों का हिन्दी में अनुवाद किया.
सम्मान
पद्मभूषण
साहित्य अकादमी पुरस्कार
ज्ञानपीठ पुरस्कार
व्यास सम्मान
प्रेमचंद पुरस्कार
अन्तर्राष्ट्रीय प्रीमियो फ़ेरेनिया सम्मान
शलाका सम्मान
कार चलने के अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर वे साहित्य से जुड़े.
प्रमुख कृतियां : वाजश्रवा के बहाने, तीसरा सप्तक,
चक्रव्यूह, अपने सामने, आकारों के आसपास
समय पत्रिका

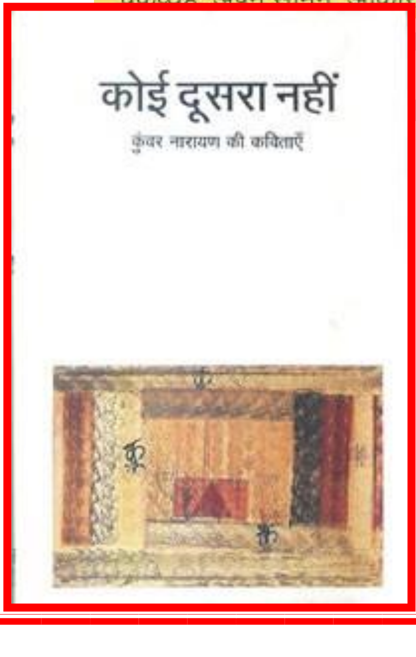

कोई दूसरा नहीं
कुंवर नारायण की कविताएँ

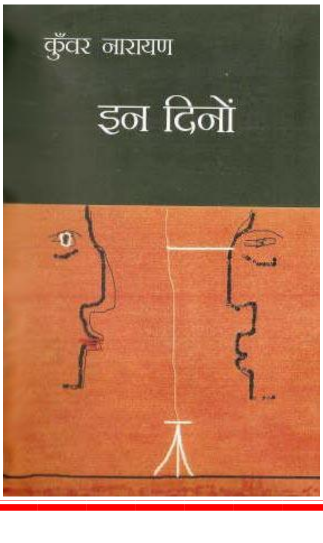

कुँवर नारायण
इन दिनों

आत्मजयी
कुँवर नारायण

पूरा नाम	कुंवर नारायण
जन्म	19 सितम्बर, 1927
जन्म भूमि	फैजाबाद, उत्तर प्रदेश
कर्म भूमि	भारत
कर्म-क्षेत्र	कवि, लेखक
मुख्य रचनाएँ	'चक्रव्यूह', 'तीसरा सप्तक', 'परिवेश : हम-तुम', 'आत्मजयी', 'आकारों के आसपास', 'अपने सामने', 'वाजश्रवा के बहाने', 'कोई दूसरा नहीं' और 'इन दिनों' आदि।
भाषा	हिन्दी, अंग्रेज़ी
विद्यालय	लखनऊ विश्वविद्यालय
शिक्षा	एम.ए. (अंग्रेज़ी साहित्य)
पुरस्कार-उपाधि	'ज्ञानपीठ पुरस्कार', 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'व्यास सम्मान', 'कुमार आशान पुरस्कार', 'प्रेमचंद पुरस्कार', 'राष्ट्रीय कबीर सम्मान', 'शलाका सम्मान', 'अन्तर्राष्ट्रीय प्रीमियो फ़ेरेनिया सम्मान' और 'पद्मभूषण'।
नागरिकता	भारतीय

डॉ. सुनील कुमार

जन्म:	१९ सितंबर १९२७ फ़ैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत
कार्यक्षेत्र:	कवि, लेखक
राष्ट्रीयता:	भारतीय
भाषा:	हिन्दी
काल:	आधुनिक काल
विधा:	गद्य और पद्य
विषय:	कविता, खंडकाव्य, कहानी, समीक्षा
साहित्यिक आन्दोलन:	नई कविता,
प्रमुख कृति(याँ):	चक्रव्यूह, आत्मजयी, वाजश्रवा के बहाने
हस्ताक्षर:	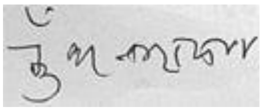

२००५ में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित

तार सप्तक के प्रमुख कवि

अन्य जानकारी	कुंवर नारायण की ख्याति सिर्फ़ एक लेखक की तरह ही नहीं, बल्कि कला की अनेक विधाओं में गहरी रुचि रखने वाले रसिक विचारक के समान भी है।
अद्यतन	17:47, 18 अप्रॅल 2015 (IST)
इन्हें भी देखें	कवि सूची, साहित्यकार सूची

कुँवर नारायण का जन्म १९ सितंबर १९२७ को हुआ। नई कविता आंदोलन के सशक्त हस्ताक्षर कुँवर नारायण अज्ञेय द्वारा संपादित *तीसरा सप्तक* (१९५९) के प्रमुख कवियों में रहे हैं। कुँवर नारायण को अपनी रचनाशीलता में इतिहास और मिथक के जरिये वर्तमान को देखने के लिए जाना जाता है। कुंवर नारायण का रचना संसार इतना व्यापक एवं जटिल है कि उसको कोई एक नाम देना सम्भव नहीं। यद्यपि कुंवर नारायण की मूल विधा कविता रही है पर इसके अलावा उन्होंने कहानी, लेख व समीक्षाओं के साथ-साथ सिनेमा, रंगमंच एवं अन्य कलाओं पर भी बखूबी लेखनी चलायी है। इसके चलते जहाँ उनके लेखन में सहज संप्रेषणीयता आई वहीं वे प्रयोगधर्मी भी बने रहे। उनकी कविताओं-कहानियों का कई भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। 'तनाव' पत्रिका के लिए उन्होंने कवाफी तथा ब्रोर्खेस की कविताओं का भी अनुवाद किया है। 2009 में कुँवर नारायण को वर्ष 2005 के लिए देश के साहित्य जगत के सर्वोच्च सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

जीवन परिचय

उन्होने इंटर तक की पढ़ाई विज्ञान विषय से की लेकिन आगे चल कर वे साहित्य के विद्यार्थी बने और १९५१ में लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। वे उत्तर प्रदेश के संगीत नाटक अकादमी के १९७६ से १९७९ तक उप पीठाध्यक्ष रहे और १९७५ से १९७८ तक अज्ञेय द्वारा संपादित मासिक पत्रिका *नया प्रतीक* के संपादक मंडल के सदस्य भी रहे। पहले माँ और फिर बहन की असामयिक मौत ने उनकी अन्तरात्मा को झकझोर कर रख दिया, पर टूट कर भी जुड़ जाना उन्होंने सीख लिया था। पैतृक रूप में उनका कार का व्यवसाय था, पर इसके साथ उन्होंने साहित्य की दुनिया में भी प्रवेश करना मुनासिब समझा। इसके पीछे वे कारण गिनाते हैं कि साहित्य का धंधा न करना पड़े इसलिए समानान्तर रूप से अपना पैतृक धंधा भी चलाना उचित समझा।[1] 19 सितम्बर, 1927 ई. को कुंवर नारायण का जन्म उत्तर प्रदेश के फ़ैज़ाबाद ज़िले में हुआ था। कुंवर जी ने अपनी इंटर तक की शिक्षा विज्ञान वर्ग के अभ्यर्थी के रूप में प्राप्त की थी, किंतु साहित्य में रुचि होने के कारण वे आगे साहित्य के विद्यार्थी बन गये थे। उन्होंने 'लखनऊ विश्वविद्यालय' से 1951 में अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. किया। 1973 से 1979 तक वे 'संगीत नाटक अकादमी' के उप-पीठाध्यक्ष भी रहे। कुंवर जी ने 1975 से

1978 तक अज्ञेय द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका में सम्पादक मंडल के सदस्य के रूप में भी कार्य किया। कुंवर नारायण की माता, चाचा और फिर बहन की असमय ही टी.बी. की बीमारी से मृत्यु हो गई थी। बीमारी से उनकी बहन बृजरानी की मात्र 19 वर्ष की अवस्था में ही मृत्यु हुई थी। इससे उन्हें बड़ा कष्ट और दु:ख पहुँचा था। कुंवर नारायण के अनुसार -
मृत्यु का यह साक्षात्कार व्यक्तिगत स्तर पर तो था ही सामूहिक स्तर पर भी था। द्वितीय विश्व युद्ध खत्म होने के बाद सन् पचपन में मैं पौलेंड गया था। विश्वनाथ प्रताप सिंह भी गए थे मेरे साथ। वहाँ मैंने युद्ध के विध्वंस को देखा। तब मैं सत्ताइस साल का था। इसीलिए मैं अपने लेखन में जिजीविषा की तलाश करता हूँ। मनुष्य की जो जिजीविषा है, जो जीवन है, वह बहुत बड़ा यथार्थ है।[1]

कार चलाना कुंवर जी का पैतृक व्यवसाय रहा था। लेकिन इसके साथ-साथ उन्होंने साहित्य जगत् में भी अपना प्रवेश कर लिया।

कविता
कुँवर नारायण

कविता वक्तव्य नहीं गवाह है
कभी हमारे सामने
कभी हमसे पहले
कभी हमारे बाद

कोई चाहे भी तो रोक नहीं सकता
भाषा में उसका बयान
जिसका पूरा मतलब है सचाई
जिसकी पूरी कोशिश है बेहतर इन्सान

उसे कोई हड़बड़ी नहीं
कि वह इश्तहारों की तरह चिपके
जुलूसों की तरह निकले
नारों की तरह लगे
और चुनावों की तरह जीते

वह आदमी की भाषा में
कहीं किसी तरह जिंदा रहे, बस

लेखन कार्य

कुंवर नारायण इस दौर के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी काव्ययात्रा 'चक्रव्यूह' से शुरू हुई थी। इसके साथ ही उन्होंने हिन्दी के काव्य पाठकों में एक नई तरह की समझ पैदा की। यद्यपि कुंवर नारायण की मूल विधा कविता ही रही है, किंतु इसके अलावा उन्होंने कहानी, लेख व समीक्षाओं के साथ-साथ सिनेमा, रंगमंच एवं अन्य कलाओं पर भी बखूबी अपनी लेखनी चलायी। इसके चलते जहाँ उनके लेखन में सहज ही संप्रेषणीयता आई, वहीं वे प्रयोगधर्मी भी बने रहे। उनकी कविताओं और कहानियों का कई भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। 'तनाव' पत्रिका के लिए उन्होंने कवाफी तथा ब्रोर्खेस की कविताओं का भी अनुवाद किया।

डॉ. सुनील कुमार परीट

चक्रव्यूह

कुँवर नारायण हमारे दौर के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी काव्ययात्रा 'चक्रव्यूह' से शुरू हुई। इसके साथ ही उन्होंने हिन्दी के काव्य पाठकों में एक नई तरह की समझ पैदा की।

परिवेश हम तुम

उनके संग्रह 'परिवेश हम तुम' के माध्यम से मानवीय संबंधों की एक विरल व्याख्या हम सबके सामने आई।

आत्मजयी

उन्होंने अपने प्रबंध 'आत्मजयी' में मृत्यु संबंधी शाश्वत समस्या को कठोपनिषद का माध्यम बनाकर अद्भुत व्याख्या के साथ हमारे सामने रखा। इसमें नचिकेता अपने पिता की आज्ञा, 'मृत्य वे त्वा ददामीति' अर्थात मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ, को शिरोधार्य करके यम के द्वार पर चला जाता है, जहाँ वह तीन दिन तक भूखा-प्यासा रहकर यमराज के घर लौटने की प्रतीक्षा करता है। उसकी इस साधना से प्रसन्न होकर यमराज उसे तीन वरदान माँगने की अनुमति देते हैं। नचिकेता इनमें से पहला वरदान यह माँगता है कि उसके पिता वाजश्रवा का क्रोध समाप्त हो जाए।

वाजश्रवा के बहाने

कुँवर नारायण ने हिन्दी के काव्य पाठकों में एक नई तरह की समझ पैदा की। नचिकेता के इसी कथन को आधार बनाकर कुँवर नारायणजी की जो कृति 2008 में आई, 'वाजश्रवा के बहाने', उसमें उन्होंने पिता वाजश्रवा के मन में जो उद्वेलन चलता रहा उसे अत्यधिक सात्विक शब्दावली में काव्यबद्ध किया है। इस कृति की विरल विशेषता यह है कि 'अमूर्त'को एक अत्यधिक सूक्ष्म संवेदनात्मक शब्दावली देकर नई उत्साह परख जिजीविषा को वाणी दी है। जहाँ एक ओर आत्मजयी में कुँवरनारायण जी ने मृत्यु जैसे विषय का निर्वचन किया है, वहीं इसके ठीक विपरीत 'वाजश्रवा के बहाने'कृति में अपनी विधायक संवेदना के साथ जीवन के आलोक को रेखांकित किया है।

संगीत नाटक अकादमी

कुंवर नारायण के अनुसार - 'मैं जब उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादेमी का उपाध्यक्ष बना तो मुझे संगीतकारों के संपर्क में और निकट आने का अवसर मिला। संगीत से पुराना नाता रहा है मेरा। मैं फैयाज खाँ, ओंकारनाथ ठाकुर, अच्छन महाराज, शंभु महाराज आदि से अक्सर मिलता-जुलता था। उनके सान्निध्य ने मेरे साहित्यिक संस्कृति को कई स्तरों पर प्रभावित किया। फ़िल्म फेस्टिवल पर भी लिखता रहा हूँ। विष्णु खरे, विनोद भारद्वाज और प्रयाग शुक्ल के साथ मिलकर हमने सोचा कि हिंदी में फ़िल्म समीक्षा उपेक्षित है। दरअसल बचपन से ही मुझे सिनेमा देखने का शौक़ था। हजरतगंज (लखनऊ) में तीन सिनेमा हॉल थे जिनमें रोज शाम को सिनेमा देखता था। ये सन् 40, 50 और 60 की बात है।'[1]

साहित्य अकादमी द्वारा महत्तर सदस्यता

साहित्य अकादमी द्वारा हिंदी कवि कुंवर नारायण को महत्तर सदस्यता 20 दिसंबर 2010 को नई दिल्ली में प्रदान की गयी। नई कविता आंदोलन के सशक्त हस्ताक्षर और वर्ष 2009 में 2005 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कुंवर नारायण अज्ञेय द्वारा संपादित 'तीसरा सप्तक' के प्रमुख कवियों में रहे हैं। कुंवर नारायण को अपनी रचनाशीलता में इतिहास और मिथक के जरिए वर्तमान को देखने के लिए जाना जाता है। यद्यपि कुंवर नारायण की मूल विधा कविता रही है पर इसके अलावा उन्होंने कहानी, लेख व समीक्षाओं के साथ-साथ सिनेमा, रंगमंच एवं अन्य कलाओं पर भी बखूबी लेखनी चलायी है।[2]

सिनेमा में रुचि

फ़िल्मों में कुँवर जी की दिलचस्पी की एक ख़ास वजह है। दरअसल कुंवर नारायण को फ़िल्म माध्यम और कविता में काफ़ी समानता दिखती है। वह कहते हैं,- 'जिस तरह फ़िल्मों में रशेज इकट्ठा किए जाते हैं और बाद में उन्हें संपादित किया जाता है उसी तरह कविता रची जाती है। फ़िल्म की रचना-प्रक्रिया और कविता की रचना-प्रक्रिया में साम्य है। आर्सन वेल्स ने भी कहा है कि कविता फ़िल्म की तरह है। मैं कविता कभी भी एक नैरेटिव की तरह नहीं बल्कि टुकड़ों में लिखता हूँ। ग्रीस के मशहूर फ़िल्मकार लुई माल सड़क पर घूमकर पहले शुटिंग करते थे और उसके बाद कथानक बनाते थे। क्रिस्तॉफ किलस्वोव्स्की, इग्मार बर्गमैन, तारकोव्स्की, आंद्रेई वाज्दा आदि मेरे प्रिय फ़िल्मकार हैं। इनमें से तारकोव्स्की को मैं बहुत ज्यादा पसंद करता हूँ। उसको मैं फ़िल्मों का कवि मानता हूँ। हम शब्द इस्तेमाल करते हैं, वो बिम्ब इस्तेमाल करते हैं, लेकिन दोनों रचना करते हैं। कला, फ़िल्म, संगीत ये सभी मिलकर एक संस्कृति, मानव संस्कृति की रचना करती है लेकिन हरेक की अपनी जगह है, जहाँ से वह दूसरी कलाओं से संवाद स्थापित करे। साहित्य का भी अपना एक कोना है, जहाँ उसकी पहचान सुदृढ़ रहनी चाहिए। उसे जब दूसरी कलाओं या राजनीति में हम मिला देते हैं तो हम उसके साथ न्याय नहीं करते। आप समझ रहे हैं न मेरी बात?[1]

प्रमुख कृतियाँ

इनकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं-

1. चक्रव्यूह - 1956
2. तीसरा सप्तक - 1959
3. परिवेश : हम-तुम - 1961
4. आत्मजयी/प्रबन्ध काव्य - 1965
5. आकारों के आसपास - 1971
6. अपने सामने - 1979
7. वाजश्रवा के बहाने
8. कोई दूसरा नहीं
9. इन दिनों

इनके संग्रह 'परिवेश हम तुम' के माध्यम से मानवीय संबंधों की एक विरल व्याख्या सबके सामने आई। उन्होंने अपने प्रबंध 'आत्मजयी' में मृत्यु संबंधी शाश्वत समस्या को कठोपनिषद का माध्यम बनाकर अद्भुत व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया। इस कृति की विरल विशेषता यह है कि 'अमूर्त' को एक अत्यधिक सूक्ष्म संवेदनात्मक शब्दावली देकर नई उत्साह परख जिजीविषा को वाणी दी है। जहाँ एक ओर 'आत्मजयी' में कुंवर नारायण ने मृत्यु जैसे विषय का निर्वचन किया है, वहीं इसके ठीक विपरीत 'वाजश्रवा के बहाने' कृति में अपनी विधायक संवेदना के साथ जीवन के आलोक को रेखांकित किया है। यह कृति आज के इस बर्बर समय में भटकती हुई मानसिकता को न केवल राहत देती है, बल्कि यह प्रेरणा भी देती है कि दो पीढ़ियों के बीच समन्वय बनाए रखने का समझदार ढंग क्या हो सकता है। उन्हें पढ़ते हुए, ये लगता है कि कुंवर नारायण हिन्दी की कविता के पिछले 55 वर्ष के इतिहास के संभवतः श्रेष्ठतम कवि हैं। कुंवर नारायण को 2009 में वर्ष 2005 के 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।[3] 6 अक्टूबर को राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने उन्हें देश के सबसे बड़े साहित्यिक सम्मान से सम्मानित किया। कुंवर जी को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'व्यास सम्मान', 'कुमार आशान पुरस्कार', 'प्रेमचंद पुरस्कार', 'राष्ट्रीय कबीर सम्मान', 'शलाका सम्मान', 'मेडल ऑफ़ वॉरसा यूनिवर्सिटी', पोलैंड और रोम के 'अन्तर्राष्ट्रीय प्रीमियो फ़ेरेनिया सम्मान' और 2009 में 'पद्मभूषण' से भी सम्मानित किया जा चुका है।

साहित्य यात्रा

एम०एम० करने के ठीक पाँच वर्ष बाद वर्ष १९५६ में २९ वर्ष की आयु में उनका प्रथम काव्य संग्रह चक्रव्यूह नाम से प्रकाशित हुआ। अल्प समय में ही अपनी प्रयोगधर्मिता के चलते उन्होंने पचान स्थापित कर ली और नतीजन अज्ञेय जी ने वर्ष १९५९ में उनकी कविताओं को केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और विजयदेव नारायण साही के साथ 'तीसरा सप्तक' में शामिल किया। यहाँ से उन्हें काफी प्रसिद्धि मिली। १९६५ में 'आत्मजयी' जैसे प्रबंध काव्य के प्रकाशन के साथ ही कुंवर नारायण ने असीम संभावनाओं वाले कवि के रूप में पहचान बना ली। फिर तो आकारों के आसपास (कहानी संग्रह-१९७१), परिवेश : हम-तुम, अपने सामने, कोई दूसरा नहीं, इन दिनों, आज और आज से पहले (समीक्षा), मेरे साक्षात्कार और हाल ही में प्रकाशित वाजश्रवा के बहाने सहित उनकी तमाम कृतियाँ आईं।[2]

समालोचना

कुँवर नारायण हमारे दौर के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हैं। उनकी काव्ययात्रा 'चक्रव्यूह' से शुरू हुई। इसके साथ ही उन्होंने हिन्दी के काव्य पाठकों में एक नई तरह की समझ पैदा की। उनके संग्रह 'परिवेश हम तुम' के माध्यम से मानवीय संबंधों की एक विरल व्याख्या हम सबके सामने आई। उन्होंने अपने प्रबंध 'आत्मजयी' में मृत्यु संबंधी शाश्वत समस्या को कठोपनिषद का माध्यम बनाकर अद्भुत व्याख्या के साथ हमारे सामने रखा। इसमें नचिकेता अपने पिता की आज्ञा, 'मृत्य वे त्वा ददामीति' अर्थात मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ, को शिरोधार्य करके यम के द्वार पर चला जाता है, जहाँ वह तीन दिन तक भूखा-प्यासा रहकर यमराज के घर लौटने की प्रतीक्षा करता है। उसकी इस साधना से प्रसन्न होकर यमराज उसे तीन वरदान माँगने की अनुमति देते हैं। नचिकेता इनमें से पहला वरदान यह माँगता है कि उसके पिता वाजश्रवा का क्रोध समाप्त हो जाए। नचिकेता के इसी कथन को आधार बनाकर कुँवर नारायणजी की जो कृति 2008 में आई, 'वाजश्रवा के बहाने', उसमें उन्होंने पिता वाजश्रवा के मन में जो उद्वेलन चलता रहा उसे अत्यधिक सात्विक शब्दावली में काव्यबद्ध किया है। इस कृति की विरल विशेषता यह है कि 'अमूर्त'को एक अत्यधिक सूक्ष्म संवेदनात्मक शब्दावली देकर नई उत्साह परख जिजीविषा को वाणी दी है। जहाँ एक ओर आत्मजयी में कुँवरनारायण जी ने मृत्यु जैसे विषय का निर्वचन किया है, वहीं इसके ठीक विपरीत 'वाजश्रवा के बहाने'कृति में अपनी विधायक संवेदना के साथ जीवन के आलोक को रेखांकित किया है। यह कृति आज के इस बर्बर समय में भटकती हुई मानसिकता को न केवल राहत देती है, बल्कि यह प्रेरणा भी देती है कि दो पीढ़ियों के बीच समन्वय बनाए रखने का समझदार ढंग क्या हो सकता है।[3]

प्रकाशित कृतियाँ

कविता संग्रह - *चक्रव्यूह* (*१९५६*), *तीसरा सप्तक* (*१९५९*),*परिवेश : हम-तुम*(*१९६१*), *अपने सामने* (*१९७९*), *कोई दूसरा नहीं*(*१९९३*), *इन दिनों*(*२००२*) /

खंड काव्य - *आत्मजयी* (*१९६५*) और *वाजश्रवा के बहाने* (*२००८*)।

कहानी संग्रह - *आकारों के आसपास* (*१९७३*)।

समीक्षा विचार - *आज और आज से पहले*(*१९९८*), *मेरे साक्षात्कार* (*१९९९*), *साहित्य के कुछ अन्तर्विषयक संदर्भ* (*२००३*)।

संकलन - कुंवर नारायण-संसार(चुने हुए लेखों का संग्रह) २००२,कुँवर नारायण उपस्थिति (चुने हुए लेखों का संग्रह)(२००२), कुँवर नारायण चुनी हुई कविताएँ (२००७), कुँवर नारायण- प्रतिनिधि कविताएँ (२००८)

पुरस्कार सम्मान

कुँवर नारायण को वर्ष 2005 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। छह अक्टूबर को राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने उन्हें देश के सबसे बड़े साहित्यिक सम्मान से सम्मानित किया।

ज्ञानपीठ के अलावा कुँवर नारायण को साहित्य अकादमी पुरस्कार, व्यास सम्मान, कुमार आशान पुरस्कार, प्रेमचंद पुरस्कार, राष्ट्रीय कबीर सम्मान, शलाका सम्मान, मेडल ऑफ़ वॉरसा यूनिवर्सिटी, पोलैंड और रोम के अन्तर्राष्ट्रीय प्रीमियो फ़ेरेनिया सम्मान और २००९ में पद्मभूषण सम्मान से सम्मानित किया गया।[4][5]

कं़ुवर नारायणका जन्म 19 सितंबर, 1927 को हुआ I उन्होंने 1951 में लखनऊ विष्वविद्यालय से अंग्रजी साहित्य में एमए किया I वे उत्तर प्रदेष संगीत नाटक अकादमी के 1976 से 1979 तक उप पीठाध्यक्ष रहे और 1975 से 1978 तक अज्ञेय द्वारा संपादित मासिक पत्रिका ष्नया प्रतीक ष् के संपादन मंडल के सदस्य भी रहे। 1956 में 29 वर्ष की आयु में उनका पहला काव्य संग्रह ष्चक्रव्यूहष् नाम से प्रकाषित हुआ। अज्ञेय ने वर्ष 1959 में उनकी कविताओं को केदारनाथ सिंह, सर्वेष्वर दयाल सक्सेना और विजयदेव नारायण साही के साथ ष्तीसरा सप्तकष् में षामिल किया I उन्होंने ष्आकारों के आसपासष् ;कहानी संग्रह-1971द्धए ष्अपने सामनेष्, ष्कोई दूसरा नहींष्ए इन दीनों, ष्आज और आज से पहलेष् ;समीक्षाद्ध, ष्मेरे साक्षात्कारष् आदि कृतियों की रचना की है। 2009 में उन्हें वर्ष 2005 के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

पूर्वाभास

ओ मस्तक विराट,
अभी नहीं मुकुट और अलंकार।
अभी नहीं तिलक और राज्यभार।

तेजस्वी चिन्तित ललाट। दो मुझको
सदियों तपस्याओं में जी सकने की क्षमता।
पाऊँ कदाचित् वह इष्ट कभी
कोई अमरत्व जिसे
सम्मानित करते मानवता सम्मानित हो।

सागर-प्रक्षालित पग,
स्फुर घन उत्तरीय,
वन प्रान्तर जटाजूट,
माथे सूरज उदीय,

...इतना पर्याप्त अभी।
स्मरण में
अमिट स्पर्श निष्कलंक मर्यादाओं के।
बात एक बनने का साहस-सा करती....।

तुम्हारे शब्दों में यदि न कह सकूँ अपनी बात,
विधि-विहीन प्रार्थना
यदि तुम तक न पहुँचे तो
क्षमा कर देना,

मेरे उपकार-मेरे नैवेद्य-
समृद्धियों को छूते हुए
अर्पित होते रहे जिस ईश्वर को
वह यदि अस्पष्ट भी हो

तो ये प्रार्थनाएँ सच्ची हैं...इन्हें
अपनी पवित्रताओं से ठुकराना मत,
चुपचाप विसर्जित हो जाने देना
    समय पर....सूर्य पर...

भूख के अनुपयुक्त इस किंचित् प्रसाद को
फिर जूठा मत करना अपनी श्रद्धाओं से,
इनके विधर्म को बचाना अपने शाप से,
इनकी भिक्षुक विनय को छोटा मत करना
अपनी भिक्षा की नाप से
उपेक्षित छोड़ देना
  हवाओं पर, सागर पर....
कीर्ति-स्तम्भ वह अस्पष्ट आभा,

सूर्य से सूर्य तक,
प्राण से प्राण तक।
नक्षत्रों,
असंवेद्य विचरण को शीर्षक दो

भीड़-रहित पूजा को फूल दो
तोरण-मण्डप-विहीन मन्दिर को दीपक दो
जबतक मैं न लौटूँ
उपासित रहे वह सब

जिस ओर मेरे शब्दों के संकेत।
जब-जब समर्थ जिज्ञासा से
काल की विदेह अतिशयता को
कोई ललकारे-
सीमा-सन्दर्भहीन साहस को इंगित दो।

पिछली पूजाओं के ये फूटे मंगल-घट।
किसी धर्म-ग्रन्थ के
पृष्ठ-प्रकरण-शीर्षक-
सब अलग-अलग।
वक्ता चढ़ावे के लालच में
बाँच रहे शास्त्र-वचन,
ऊँघ रहे श्रोतागण !...

ओ मस्तक विराट,
इतना अभिमान रहे-
भ्रष्ट अभिषेकों को न दूँ मस्तक
न दूँ मान..
इससे अच्छा
चुपचाप अर्पित हो जा सकूँ
दिगन्त प्रतीक्षाओं को....

डॉ. सुनील कुमार परीट

८. अमरकांत

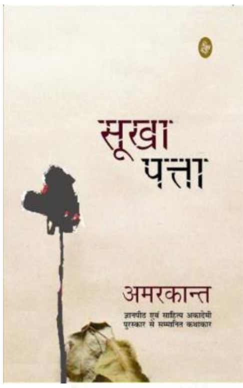

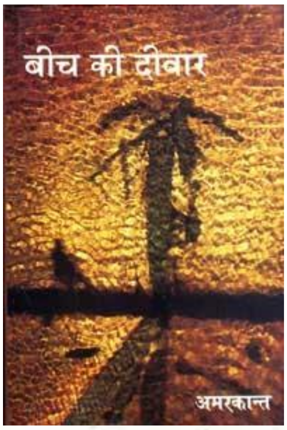

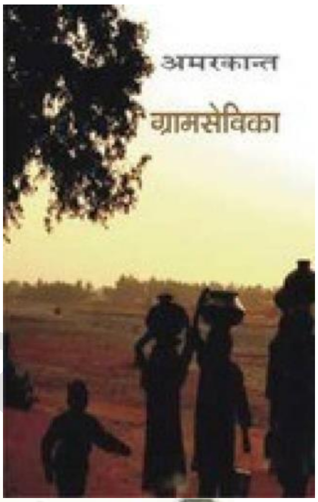

दोपहर का सामना मुंबई, शनिवार २९ दिसंबर २००७ ११

अमरकांतः एक कद्दावर कथाकार

अमरकांत का जन्म १ जुलाई १९२५ को उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले बलिया के रसड़ा तहसील के अंतर्गत आने वाले भगमलपुर नामक गांव में हुआ। अमरकांत कायस्थ परिवार से हैं। आपके बचपन का नाम श्रीराम वर्मा है। आपके पिता सीताराम वर्मा और मां अनंती देवी ने आपका पालन-पोषण लाड़-प्यार से किया। आपके बाबा गोपाल लाल जी मुहर्रिर थे। पिता मुख्तारी की परीक्षा पास कर बलिया कचहरी में ही प्रैक्टिस करते थे।

अमरकांत का परिवार बड़ा था। अमरकांत को लेकर परिवार में सात भाई और एक बहन थी। अमरकांत अपने पिता के सबसे बड़े पुत्र हैं। अमरकांत की प्रारंभिक शिक्षा बलिया में ही हुई। १९४६ में अमरकांत ने बलिया के सतीशचंद्र इंटर कॉलेज से इंटरमीडिएट की पढ़ाई पूरी की। बी. ए. करने हेतु वे इलाहाबाद आए। यहां से बी. ए. करने के बाद अमरकांत ने निश्चय कर लिया था कि उन्हें हिंदी साहित्य की सेवा करनी है। मन में पत्रकार बनने की इच्छा थी, अतः आगरा शहर से निकलने वाले दैनिक पत्र 'सैनिक' के संपादकीय विभाग से उनकी नौकरी का क्रम शुरू हुआ। यहीं पर वे प्रगतिशील लेखक के संघ की बैठक में जाने लगे। इन्हीं बैठकों में अमरकांत की मुलाकात डॉ. रामविलास शर्मा, राजेंद्र यादव, रघी राजेंद्र व विश्वनाथ भटेले जैसे साहित्यकारों से हुई। अमरकांत ने अपनी कहानी 'इंटरव्यू' इसी प्रगतिशील लेखक संघ की मीटिंग में सुनाई थी।

आगरे के बाद अमरकांत इलाहाबाद आ गए और वहां से निकलने वाले 'अमृत पत्रिका' नामक दैनिक के संपादकीय विभाग में कार्य करने लगे। अमरकांत यहां के प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े और ओमप्रकाश, मार्कंडेय, कमलेश्वर व दुष्यंत कुमार जैसे लेखकों के संपर्क में आए। पर यहां अमरकांत सुख से नहीं रह पाए। आर्थिक समस्या बड़ी थी। अल्प वेतन पर कार्य करना पड़ता था। इसी बीच १९५४ में मात्र २९ वर्ष की आयु में अमरकांत गंभीर रूप से बीमार पड़े। वे हृदय रोग के शिकार हो गए थे। इसी बीच उन्हें लखनऊ जाना पड़ा। लखनऊ रहते हुए अमरकांत गहरे मानसिक द्वंद्व से घिरे रहे। उन्हें जीवन से एक तरह से निराशा हो गई थी। उन्हें यह लगने लगा था कि अब वे किसी काम के नहीं रह गए। आर्थिक तंगी व बीमारी के बीच अमरकांत ने अपने लेखन को ही अपनी आजीविका का आधार बनाया।

अमरकांत के साथ लेखक

परिवार की जिम्मेदारियों के प्रति वे सचेत थे। अपनी क्षमताओं से बढ़कर उन्होंने करने का हमेशा ही प्रयत्न किया। 'सैनिक' और 'अमृत' पत्रिका के अतिरिक्त अमरकांत दैनिक भारत और कहानी मासिक से भी जुड़े। 'मनोरमा' पाक्षिक का संपादन कार्य भी अमरकांत ने किया। अमरकांत खुद भी एक पत्रिका निकालना चाहते थे पर सबसे बड़ी समस्या आर्थिक ही थी। पर संसाधनों की समस्या ने उनकी साधना में खलल नहीं पड़ने दिया। वर्ष २००४ से उन्होंने 'बहाव' नामक पत्रिका निकालना प्रारंभ किया है। यह पत्रिका 'अमर कृतित्व' प्रकाशन द्वारा प्रकाशित होती है। अमरकांत के छोटे पुत्र अरविंद इस प्रकाशन कार्य में मुख्य सहायक हैं। अरविंद जी खुद एक कहानीकार हैं।

अमरकांत को अबतक जो पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं, उनमें अभी-अभी घोषित साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार, यशपाल पुरस्कार, जन-संस्कृति सम्मान, मध्य प्रदेश का 'अमरकांत कीर्ति' सम्मान और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का सम्मान प्रमुख है।

अमरकांत के अबतक प्रकाशित सभी कहानी संग्रहों को 'अमरकांत की संपूर्ण कहानियां खंड एक और दो' नाम से पुनः प्रकाशित किया गया है। इससे उनका संपूर्ण कहानी साहित्य आसानी से एक जगह पाठकों को उपलब्ध हो सका है। इसका प्रथम संस्करण २००२ में अमर कृतित्व प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा निकाला गया। इनके अतिरिक्त अमरकांत का नवीनतम कहानी संग्रह 'औरत और बच्चे' वर्ष २००५ में प्रकाशित हो चुका है। अमरकांत के प्रकाशित अबतक के कुल उपन्यास १० हैं। सूखा पत्ता, आकाश पक्षी, काले-उजले दिन, कंटीली राह के फूल, ग्रामसेविका, सुखजीवी, बीच की दीवार, सुन्नर पांडे की पतोह, सुरंग, इन्हीं हथियारों से के अतिरिक्त दिल्ली से निकलनेवाली 'कथा' पत्रिका में 'विदा की रात' नाम से भी अमरकांत जी का एक लघु उपन्यास हाल ही में प्रकाशित हुआ है। 'कुछ यादें कुछ बातें' नाम से एक संस्मरणात्मक पुस्तक राजकमल द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। अमरकांत ने समय-समय पर बाल साहित्य भी प्रचुर लिखा है।

प्रगतिशील दृष्टि और जनवादी विचारधारा के कथाकार अमरकांत का संपूर्ण साहित्य अपने समय का जीवंत दस्तावेज है। उनकी कहानियां उन्हें प्रेमचंद के समकक्ष प्रतिष्ठित करती हैं तो 'इन्हीं हथियारों से' जैसे उपन्यास को महाकाव्यात्मक गरिमा प्राप्त है। १९७७ में प्रकाशित 'अमरकांत वर्ष-1' नामक पुस्तक में अमरकांत के व्यक्तित्व और तब तक के प्रकाशित साहित्य पर विशद विवेचना प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक का संपादन रवींद्र कालिया, ममता कालिया और नरेश सक्सेना ने किया है। अमरकांत के व्यक्तित्व और साहित्यिक अवदान को समझने में यह पुस्तक रीढ़ की हड्डी की तरह महत्वपूर्ण है। 'नया ज्ञानोदय' पत्रिका के नवंबर २००६ के अंक में अमरकांत पर पुनः एक लंबी चर्चा हुई। पत्रिका के संपादक रवींद्र कालिया ही हैं। अमरकांत को लेकर रवींद्र कालिया का योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है। अमरकांत को गंभीर रूप से पढ़ने-लिखने वालों से यह बात छुप नहीं सकती।

अमरकांत 'नई कहानी' आंदोलन के प्रमुख कहानीकारों में से एक हैं। लेकिन अमरकांत को नई कहानी आंदोलन तक बांधा नहीं जा सकता। क्योंकि पिछले ५०-६० सालों से अमरकांत का लेखन कार्य सतत जारी है। जबकि नई कहानी का काल खंड मोटे तौर पर १९५४ से १९६३ तक माना जाता है। अमरकांत अपने कथा साहित्य के माध्यम से आम आदमी की संवेदनाओं को बड़ी ही कुशलता से अभिव्यक्त करते रहे हैं। अमरकांत के पात्रों की चारित्रिक जटिलता काल्पनिक नहीं है। बहुस्तरीय शोषण, मूल्यहीनता और मोहभंग जैसी जटिल स्थितियों का मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रहारधर्मी व्यंग्यों के माध्यम से अमरकांत ने व्यक्त किया है। कथाकार अमरकांत प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कथाकारों में से एक हैं। पिछले ५०-६० वर्षों की सतत लेखन यात्रा द्वारा अमरकांत ने अपनी ही कई सीमाओं को तोड़ा है और विचार तथा संवेदनाओं के नए स्वरूप को हमारे सामने लाया है। अमरकांत की यथार्थ परक दृष्टि ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है।

अमरकांत एक साधक के रूप में अपनी रचना प्रक्रिया में लीन हैं। ८२ वर्ष की आयु और गिरता स्वास्थ्य इस महान मनीषी की साधना में रुकावट जरूर है पर अमरकांत इनसे विचलित नहीं हैं। साहित्य अकादमी का पुरस्कार इस कद्दावर कथाकार की साधना को एक प्रणाम ही है। अमरकांत को सत्-सत् प्रणाम।

-मनीष कुमार मिश्र

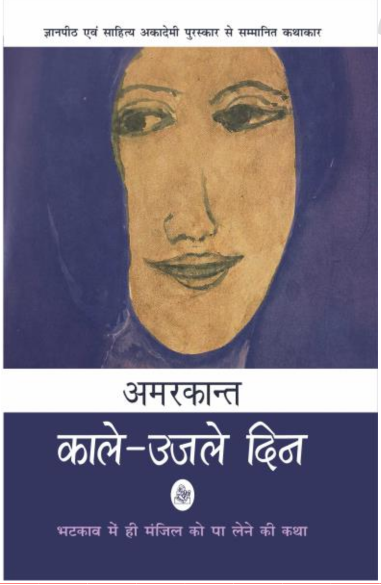

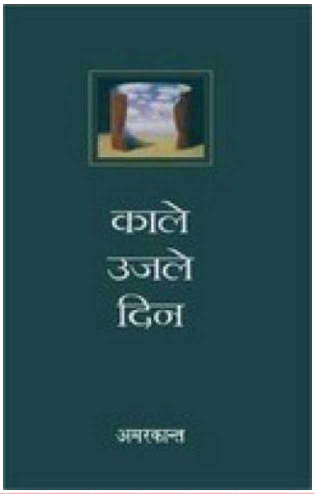

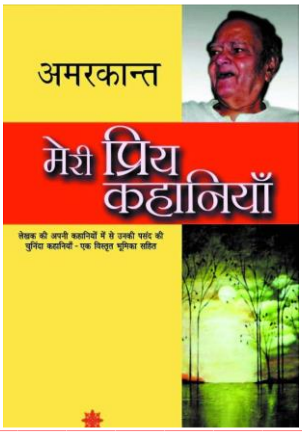

पूरा नाम	अमरकांत
अन्य नाम	श्रीराम लाल, अमरनाथ
जन्म	1 जुलाई, 1925
जन्म भूमि	नगरा गाँव, बलिया ज़िला, उत्तर प्रदेश
मृत्यु	17 फ़रवरी, 2014
मृत्यु स्थान	इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश
अभिभावक	सीताराम वर्मा, अनंती देवी
कर्म भूमि	भारत
कर्म-क्षेत्र	हिन्दी कथा साहित्य
मुख्य रचनाएँ	'ज़िंदगी और जोक', 'देश के लोग', 'मौत का नगर', 'तूफान', 'सूखा पत्ता', 'ग्राम सेविका', 'बीच की दीवार', 'इन्हीं हथियारों से', 'बानर सेना' आदि।
भाषा	हिन्दी
विद्यालय	'गवर्नमेन्ट हाई 'सतीशचन्द्र इन्टर

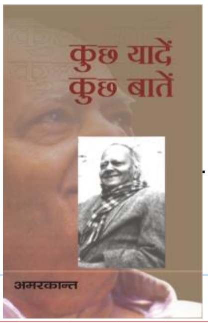

डॉ. सुनील कुमार

(अमरकान्त से अनुप्रेषित)

चित्र:Amarkant (1925-2014).jpg

	श्रीराम
जन्म	1 जुलाई 1925 उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में नगरा के पास भगमल पुर गाँव
मृत्यु	17 फ़रवरी 2014 (उम्र 88)
उपनाम	श्रीराम लाल, अमरनाथ
उपजीविका	कहानीकार, उपन्यासकार
प्रमुख पुरस्कार	2007:साहित्य अकादमी पुरस्कार : भारतीय ज्ञानपीठ
	'इलाहाबाद विश्वविद्यालय'
शिक्षा	बी.ए.
पुरस्कार-उपाधि	साहित्य अकादमी सम्मान (2007), ज्ञानपीठ पुरस्कार (2009), व्यास सम्मान (2010)
प्रसिद्धि	साहित्यकार व लेखक
नागरिकता	भारतीय
अन्य जानकारी	पहले अमरकांत जी का नाम 'श्रीराम' रखा गया था। इनके खानदान में लोग अपने नाम के साथ 'लाल` लगाते थे।
इन्हें भी देखें	कवि सूची, साहित्यकार सूची

अमरकांत (1925 - 17 फ़रवरी 2014) हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद के बाद यथार्थवादी धारा के प्रमुख कहानीकार थे। यशपाल उन्हें गोर्की कहा करते थे।[1]

जीवन वृत्त

अमरकान्त का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के नगरा कस्बे के पास स्थित भगमल पुर गाँव में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। इसके बाद उन्होंने साहित्यिक सृजन का मार्ग चुना। बलिया में पढ़ते समय उनका सम्पर्क स्वतन्त्रता आंदोलन के सेनानियों से हुआ। सन् १९४२ में वे स्वतन्त्रता-आंदोलन से जुड़ गए। शुरुआती दिनों में अमरकान्त तरतम में गजलें और लोकगीत भी गाते थे। उनके साहित्य जीवन का आरंभ एक पत्रकार के रूप में हुआ। उन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। वे बहुत अच्छी कहानियाँ लिखने के बावजूद एक अर्से तक हाशिये पर पड़े रहे। उस समय तक कहानी-चर्चा के केन्द में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव की त्रयी थी। कहानीकार के रूप में उनकी ख्याति सन् १९५५ में 'डिप्टी कलेक्टरी' कहानी से हुई।

अमरकांत के स्वभाव के संबंध में रवीन्द्र कालिया लिखते हैं- "वे अत्यन्त संकोची व्यक्ति हैं। अपना हक माँगने में भी संकोच कर जाते हैं। उनकी प्रारम्भिक पुस्तकें उनके दोस्तों ने ही प्रकाशित की थीं।...एक बार बेकारी के दिनों में उन्हें पैसे की सख्त जरूरत थी, पत्नी मरणासन्न पड़ी थीं। ऐसी विषम परिस्थिति में प्रकाशक से ही सहायता की अपेक्षा की जा सकती थी। बच्चे छोटे थे। अमरकान्त ने अत्यन्त संकोच, मजबूरी और असमर्थता में मित्र प्रकाशक से रॉयल्टी के कुछ रुपये माँगे, मगर उन्हें दो टूक जवाब मिल गया, ' पैसे नहीं हैं। ' अमरकान्तजी ने सब्र कर लिया और एक बेसहारा मनुष्य जितनी मुसीबतें झेल सकता था, चुपचाप झेल लीं।"[1] सन् १९५४ में अमरकान्त को हृदय रोग हो गया था। तब से वह एक जबरदस्त अनुशासन में जीने लगे। अपनी लड़खड़ाती हुई जिन्दगी में अनियमितता नहीं आने दी। भरसक कोशिश की, तनाव से मुक्त रहें। जवाहरलाल नेहरू उनके प्रेरणास्रोत रहे हैं। वे मानते थे कि नेहरू जी कई अर्थों में गांधीजी के पूरक थे और पंडित नेहरू के प्रभाव के कारण ही कांग्रेस संगठन प्राचीनता और पुनरुत्थान आदि कई प्रवृतियों से बच सका। 17 फ़रवरी 2014 को उनका इलाहाबाद में निधन हो गया।[2]

जन्म तथा नामकरण

अमरकांत का जन्म 1 जुलाई, 1925 को नगरा गाँव, तहसील रसड़ा, बलिया ज़िला (उत्तर प्रदेश) के एक कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सीताराम वर्मा व माता का नाम अनंती देवी था। पहले अमरकांत का नाम 'श्रीराम' रखा गया था। इनके खानदान में लोग अपने नाम के साथ 'लाल` लगाते थे। अत: अमरकांत का भी नाम 'श्रीराम लाल` हो गया। बचपन में ही किसी साधु-महात्मा द्वारा अमरकांत का एक और नाम 'अमरनाथ' रखा गया था। यह नाम अधिक प्रचलित तो नहीं हुआ, किंतु स्वयं श्रीराम लाल को इस नाम के प्रति आसक्ति हो गयी। इसलिए उन्होंने कुछ परिवर्तन करके अपना नाम 'अमरकांत` रख लिया। उनकी साहित्यिक कृतियाँ भी इसी नाम से प्रसिद्ध हुईं। अपने नामकरण की चर्चा करते हुए स्वयं अमरकांत ने लिखा है कि-

"मेरे खानदान के लोग अपने नाम के साथ 'लाल' लगाते थे। मेरा नाम भी श्रीराम लाल ही था। लेकिन जब हम लोग बलिया शहर में रहने लगे तो चार-पाँच वर्ष बाद वहाँ अनेक कायस्थ परिवारों में 'लाल' के स्थान पर 'वर्मा` जोड़ दिया गया और मेरा नाम भी श्रीराम वर्मा हो गया।

परिवार

अमरकांत जी के परिवार के लोग मध्यम कोटि के काश्तकार थे। इनके बाबा गोपाल लाल मुहर्रिर थे। पिता सीताराम वर्मा ने इलाहाबाद में रहकर पढ़ाई की थी। यहीं की कायस्थ पाठशाला से उन्होंने इन्टरमीडिएट किया था। फिर उन्होंने मुख्तारी की परीक्षा पास की और बलिया कचहरी में प्रैक्टिस करने लगे थे। अमरकांत जी के पिताजी का सनातन धर्म में गहरा विश्वास था, किन्तु वे कर्मकांडो व धार्मिक रुढ़ियों में विश्वास नहीं करते थे। उनके आराध्य देवता थे- राम और शिव। वे उर्दू और फारसी के ज्ञाता थे। उन्हें हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान था। अमरकांत की एक बड़ी बहन गायत्री थीं, जो अमरकांत के बचपन में ही बीमारी से मर गई थी। अमरकांत को लेकर परिवार में सात भाई और एक बहन थी, जिन्हें पिता सीताराम वर्मा ने योग्य तरीके से पढ़ाया-लिखाया था।

शिक्षा

अमरकांत जी का 'नगरा` के प्राइमरी स्कूल में ही नाम लिखाया गया था। कुछ दिनों के बाद उनका परिवार बलिया शहर आ गया। यहाँ के तहसीली स्कूल में अमरकांत का नाम कक्षा 'एक` में लिखा दिया गया। यहाँ पर वे कक्षा 'दो` तक ही पढ़ पाये। बाद में उनका नाम 'गवर्नमेन्ट हाई स्कूल' में कक्षा 'तीन' में लिखाया लिया। यहाँ के प्रधानाध्यापक महावीर प्रसाद जी थे। 1938-1939 ई. में अमरकांत कक्षा आठ में थे, और इसी समय उनके विद्यालय में हिन्दी के नए शिक्षक के रूप में बाबू गणेश प्रसाद का आगमन हुआ। वे साहित्य के अच्छे जानकार थे और कभी-कभी निबंध की जगह कहानी लिखने को कहते थे। बच्चों को हस्तलिखित पत्रिका भी निकालने के लिए प्रेरित किया करते थे। सन 1946 ई. में अमरकांत ने बलिया के 'सतीशचन्द्र इन्टर कॉलेज' से इन्टरमीडियेट की पढ़ाई पूरी की और बी.ए. 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय' से करने लगे।

व्यावसायिक जीवन

बी.ए. पास करने के बाद अमरकांत ने पढ़ाई बंद कर नौकरी की तलाश शुरू कर दी। कोई सरकारी नौकरी करने के बदले उन्होंने पत्रकार बनने का निश्चय कर लिया था। उनके अंदर यह विश्वास बैठ गया था कि हिन्दी ही देश सेवा का पर्याय है। वैसे अमरकांत के मन में राजनीति के प्रति एक तरह का निराशा का भाव भी आ गया था। यह भी एक कारण था, जिसकी वजह से अमरकांत पत्रकारिता की तरफ़ मुडे। अमरकांत के चाचा उन दिनों आगरा में रहते थे। उन्हीं के प्रयास से दैनिक 'सैनिक' में अमरकांत को नौकरी मिल गयी।

सेवा कार्य

'प्रयाग विश्वविद्यालय' से स्नातक करने के बाद अमरकांत ने निश्चय कर लिया था कि उन्हें हिन्दी साहित्य की सेवा करनी है। मन में पत्रकार बनने की इच्छा थी, और उन्होंने आगरा शहर से निकलने वाले दैनिक पत्र 'सैनिक' से अपनी

नौकरी की शुरूआत की। यहीं पर अमरकांत की मुलाकात विश्वनाथ भटेले से हुई, जो अमरकांत के साथ 'सैनिक' में ही कार्यरत थे। विश्वनाथ अमरकांत को अपने साथ आगरा के प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक में ले जाने लगे। इन्हीं बैठकों में अमरकांत की मुलाकात डॉ. रामविलास शर्मा, राजेन्द्र यादव, रवी राजेन्द्र व रघुवंशी जैसे साहित्यकारों से हुई। अमरकांत ने अपनी पहली कहानी 'इंटरव्यू' इसी प्रगतिशील लेखक संघ में सुनायी थी, जिसे सभी लोगों ने सराहा।

आर्थिक समस्या

अमरकांत जी का अधिकांश समय साहित्यिक गतिविधियों और मित्रों के बीच ही बीतता था। वे एक लापरवाही भरी ज़िंदगी जी रहे थे। उन्हें किसी बात की कोई विशेष चिंता भी नहीं थी। लेकिन उनके चाचा साधुशरण वर्मा को यह बात पसंद नहीं आयी। वे अमरकांत के व्यवहार को लेकर चिंतित रहने लगे। उन्होंने घर वालों को अपनी चिंता से अवगत भी कराया। उन्होंने ही अमरकांत के पिता को सलाह दी की वे उसे आगरा से वापस बुला लें। तीन वर्ष तक आगरा में रहने के बाद अमरकांत इलाहाबाद आ गये। यहाँ आने के बाद अमरकांत ने यहाँ से निकलने वाले 'अमृत पत्रिका' में नौकरी पायी। किंतु यहाँ पर भी वेतन बड़ी मामूली था। यहाँ अमरकांत ने गहरी आर्थिक तंगी को महसूस किया। प्रेस में भी उनके साथ अच्छा बर्ताव नहीं हुआ। प्रेस की अपनी आर्थिक समस्याएँ और झगड़े थे। इसी बीच अमरकांत 1954 में हृदय रोग के शिकार हुए और उन्हें लखनऊ जाना पड़ा था।

संघर्ष के दिन

अमरकांत अपने जीवन को निरर्थक समझने लगे। कहीं से कोई भी उम्मीद नजर नहीं आती थी। उनके दिन बड़े ही संघर्षपूर्ण व्यतीत हो रहे थे, किंतु अंत में उन्होंने निश्चय किया कि वे अपना लेखन कार्य जारी रखेंगे। जितना हो सकेगा उतना वे लेखन करेंगे। लेखन ही उनके जीवन का आधार रहा और उन्होंने किया भी यही। लखनऊ में रहते हुए अमरकांत गहरे मानसिक द्वन्द्व से ग्रस्त रहे। उन्हें जीवन से एक तरह से निराशा हो गयी थी। उन्हें अब यह लगने लगा कि अब वे किसी काम के नहीं रह गये। साथ ही साथ उन्हें इस बात का पछतावा भी हुआ कि उन्होंने ज़िंदगी का बहुत सारा समय यूँ ही बर्बाद कर दिया। अब वे अपना एक मिनट भी बर्बाद नहीं करना चाहते थे और लिखने के प्रण के साथ वे इस काम में जुट गये। आय का कोई निश्चित साधन न होने के कारण उनकी माली हालत कोई बहुत अच्छी नहीं रही। स्वतंत्र लेखन के द्वारा ही वे जो अर्जित कर सके उसे ही आजीविका का साधन बनाया। अमरकांत ने अपना जीवन इसी तरह व्यतीत किया।

व्यक्तित्व

अमरकांत जी के व्यक्तित्व के निर्माण में उनके व्यक्तिगत संघर्ष की अहम भूमिका थी। उन्होंने कभी भी परिस्थितियों के आगे घुटने नहीं टेके। हर हाल में वे एक आम व्यक्ति की तरह संघर्ष करते रहे, शोषण का शिकार होते रहे और पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन के लिए हर तरह के कष्ट को गले लगाते रहे। उनका यही भोगा हुआ यथार्थ उनके कथा साहित्य में अपनी पूरी समग्रता के साथ प्रस्तुत हुआ है। उनके व्यक्तित्व की महत्त्वपूर्ण बात थी 'ईमानदारी`। अमरकांत ने हमेशा अपना काम पूरी ईमानदारी के साथ किया। वे कई पत्र-पत्रिकाओं के संपादन कार्य से जुड़े रहे। इसके बावजूद वे 'अवसरवादी` नहीं बने। वे अपने अंदर एक सीमा के निर्धारण के साथ जीते रहे। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने स्वयं भी कभी उस सीमा का उल्लंघन नहीं किया। अमरकांत बाहर से जितने सुलझे व सहज लगते हैं वास्तव में अंदर से वे उतने ही उलझे और परेशान रहते। कारण यह था कि वे अपनी परेशानियों को अपने तक रखना पसंद करते थे और बाहर उसकी छाया भी नहीं पड़ने देना चाहते थे। पर यह प्राय: हो नहीं पाता था। उनके मित्र उनकी परिस्थितियों से अच्छी तरह परिचित थे। लेकिन वे यह भी जानते थे कि यह आदमी मर्यादाओं में रहने वाला है। अपने लाभ के लिए अमरकांत दूसरे का नुकसान नहीं कर सकते थे।

अमरकांत सदैव ही एक संकोची व्यक्ति रहे। आम जनता से जुड़ी हुई कोई भी बात उन्हें साधारण नहीं लगती थी। देश में होने वाली हर महत्त्वपूर्ण घटना पर उनकी बारीक नज़र रहती थी। वे खुद यह कभी भी पसंद नहीं करते थे कि वे चर्चा के केन्द्र में रहें। इन सब बातों में उन्हें एक अलग तरह का संकोच होता था। सामान्य जनता, उससे जुड़ी हुई परेशानियाँ, जीवन और साहित्य इन सब में अमरकांत की गहरी संसक्ति थी। अमरकांत न केवल एक अच्छे साहित्यकार हैं, बल्कि उतने ही अच्छे व्यक्ति भी हैं। उनका व्यक्तित्व बिना किसी बनावट के एकदम साफ़ और सहज है।

रचनाएँ

कहानी संग्रह

1. 'जिंदगी और जोंक'
2. 'देश के लोग'
3. 'मौत का नगर'
4. 'मित्र मिलन तथा अन्य कहानियाँ'
5. 'कुहासा'
6. 'तूफान'
7. 'कला प्रेमी'
8. 'प्रतिनिधि कहानियाँ'
9. 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ'
10. 'एक धनी व्यक्ति का बयान'
11. 'सुख और दुःख के साथ'
12. 'जांच और बच्चे'
13. 'अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ' (दो खंडों में)
14. 'औरत का क्रोध'।

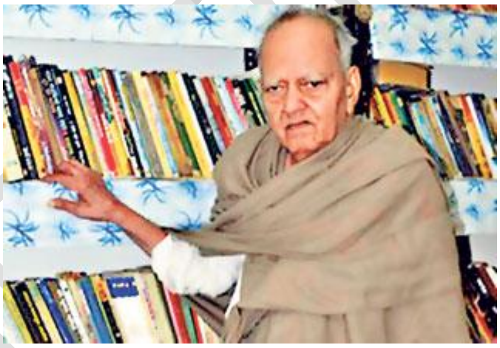

उपन्यास

1. 'सूखा पत्ता'
2. 'काले-उजले दिन'
3. 'कंटीली रह के फूल'
4. 'ग्राम सेविका'
5. 'पराई डाल का पंछी' बाद में 'सुखजीवी' नाम से प्रकाशित
6. 'बीच की दीवार'
7. 'सुन्नर पांडे की पतोह'
8. 'आकाश पक्षी'
9. 'इन्हीं हथियारों से'
10. 'विदा की रात'
11. लहरें।

संस्मरण

1. कुछ यादें, कुछ बातें
2. दोस्ती।

डॉ. सुनील कुमार शीट

बाल साहित्य

1. ‘नेऊर भाई’
2. ‘वानर सेना’
3. ‘खूँटा में दाल है’
4. ‘सुग्गी चाची का गाँव’
5. ‘झगरू लाल का फैसला’
6. ‘एक स्त्री का सफर’
7. ‘मँगरी’
8. ‘बाबू का फैसला’
9. दो हिम्मती बच्चे।

साहित्यिक वैशिष्ट्य

उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की पक्षधरता का चित्रण मिलता है। वे भाषा की सृजनात्मकता के प्रति सचेत थे। उन्होंने काशीनाथ सिंह से कहा था- "बाबू साब, आप लोग साहित्य में किस भाषा का प्रयोग कर रहे हैं? भाषा, साहित्य और समाज के प्रति आपका क्या कोई दायित्व नहीं? अगर आप लेखक कहलाए जाना चाहते हैं तो कृपा करके सृजनशील भाषा का ही प्रयोग करें।"[1] अपनी रचनाओं में अमरकांत व्यंग्य का खूब प्रयोग करते हैं। 'आत्म कथ्य' में वे लिखते हैं- " *उन दिनों वह मच्छर रोड स्थित ' मच्छर भवन ' में रहता था। सड़क और मकान का यह नूतन और मौलिक नामकरण उसकी एक बहन की शादी के निमन्त्रण पत्र पर छपा था। कह नहीं कह सकता कि उसका मुख्य उद्देश्य तत्कालीन खुनिसिपैलिटी पर व्यंग्य करना था अथवा रिश्तेदारों को मच्छरदानी के साथ आने का निमंत्रण।*"[3] उनकी कहानियों में उपमा के भी अनूठे प्रयोग मिलते हैं, जैसे, ' वह लंगर की तरह कूद पड़ता ', ' बहस में वह इस तरह भाग लेने लगा, जैसे भादों की अँधेरी रात में कुत्ते भौंकते हैं ', ' उसने कौए की भाँति सिर घुमाकर शंका से दोनों ओर देखा। *आकाश एक स्वच्छ नीले तंबू की तरह तना था।* लक्ष्मी का मुँह हमेशा एक कुल्हड़ की तरह फूला रहता है। ' ' दिलीप का प्यार फागुन के अंधड़ की तरह बह रहा था' आदि- आदि।[4]

आलोचना

रचनात्मकता की दृष्टि से अमरकांत को गोर्की के समकक्ष बताते हुए यशपाल ने लिखा था- "क्या केवल आयु कम होने या हिन्दी में प्रकाशित होने के कारण ही अमरकान्त गोर्की की तुलना में कम संगत मान लिए जायें। जब मैंने अमरकान्त को गोर्की कहा था, उस समय मेरी स्मृति में गोर्की की कहानी ' शरद की रात ' थी। उस कहानी ने एक साधनहीन व्यक्ति को परिस्थितियाँ और उन्हें पैदा करने वाले कारणों के प्रति जिस आक्रोश का अनुभव मुझे दिया था, उसके मिलते-जुलते रूप मुझे अमरकान्त की कहानियों में दिखाई दिये।"[1]

पुरस्कार / सम्मान

उनकी रचनाओं के लिए उन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उत्तर प्रदेश संस्थान की ओर से भी उन्हें पुरस्कार प्रदान किया गया था।

अमरकांत जी को जो प्रमुख पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए, वे निम्नलिखित हैं-

1. साहित्य अकादमी सम्मान - 2007
2. ज्ञानपीठ पुरस्कार - 2009
3. व्यास सम्मान - 2010

4. सोवियतलैंड नेहरू पुरस्कार
5. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान पुरस्कार
6. मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार
7. यशपाल पुरस्कार
8. जन-संस्कृति सम्मान
9. मध्य प्रदेश का 'अमरकांत कीर्ति` सम्मान
10. 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय' के हिंदी विभाग का सम्मान।

निधन समाचार

17 फ़रवरी 2014, सोमवार

यशस्वी साहित्यकार अमरकांत का देहांत

हिन्दी के यशस्वी कथाकार और प्रेमचंद की परंपरा के महान् रचनाकार अमरकांत का सोमवार 17 फ़रवरी, 2014 को सुबह दस बजे निधन हो गया। अशोक नगर स्थित पंचपुष्प अपार्टमेंट के अपने आवास में स्नान करते वक्त फिसलने के तुरंत बाद उनकी सांसें थम गईं। वह 88 वर्ष के थे। उनका अंतिम संस्कार मंगलवार अपराह्न 11 बजे रसूलाबाद घाट पर किया गया। वह अपने पीछे बेटे-बेटियों और और नाती-पोतों का भरा पूरा परिवार छोड़कर गए हैं। अमरकांत के निधन से साहित्य, कला और संस्कृति से जुड़े लोग स्तब्ध रह गए। हिन्दी साहित्यकार असग़र वजाहत ने अमरकांत के निधन पर शोक जताते हुए कहा, "अमरकांत अपनी पीढ़ी के एक ऐसे कहानीकार थे जिनसे उस समय के युवा कहानीकारों ने बहुत सीखा। वो कहानीकारों में इस रूप में विशेष माने जाएंगे कि एक पूरी पीढ़ी को उन्होंने सिखाया-बताया।" अमरकांत को साल 2007 में साहित्य अकादमी और साल 2009 में ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था।

अपने पिता की सच्चाई और ईमानदारी के एक प्रसंग का वर्णन करते हुए अमरकांत ने लिखा है कि एक बार उनके (अमरकांत के पिता के) छोटे भाई बाजार के फलवाले के यहाँ से कोई फल चोरी से लेकर घर आ गये थे। यह बात जब अमरकांत के पिताजी को मालूम पड़ी तो उन्हें बहुत गुस्सा आया। उन्होंने छोटे भाई को हिदायत दी की वे फल वापस देकर आयें। और जब उनके भाई बाजार जाकर फल वापस कर आये तो वे अपने भाई को गले लगाकर खूब रोये।

अमरकांत का परिवार बड़ा था। आप परिवार में सबसे बड़े थे। अमरकांत की एक बड़ी बहन थी जो अमरकांत के बचपन में ही बीमारी से मर गई थी। उनका नाम गायत्री था। अमरकांत को लेकर परिवार में सात भाई और एक बहन (चौथे नंबर पर) थी जिन्हें पिता सीताराम वर्मा ने योग्य तरीके से पढ़ाया - लिखाया।

भगमलपुर स्थित अमरकांत का पैतृक मकान मिट्टी का बना हुआ बड़ा मकान था। मकान के अंदर दो आँगन थे। पहला आँगन दूसरे की अपेक्षा बड़ा था। दूसरा आँगन एक तरह से घर का पिछवाड़ा (पीछे का हिस्सा) था। इस पिछवाड़े के हिस्से में एक कुआँ और शौचालय था। घर का यह हिस्सा घर की औरतों की सुविधा के लिए था। घर के पहले आँगन के चारों तरफ कई कमरे बने हुए थे। कोठिला, पूजाघर, रसोई घर आदि कई कमरे थे। घर से बाहर निकलते समय एक बड़े से दालान से होकर गुजरना पड़ता था। परिवार के सदस्यों की संख्या भी अधिक थी। एक बड़े संयुक्त परिवार के लिए इस तरह के मकान आवश्यक भी हैं। भगमलपुर के संपन्न परिवारों में से अमरकांत का परिवार भी एक था।

पाठ्या-पुस्तकें पढ़ने में अमरकांत का मन नहीं लगता था। अमरकांत के घर जो मास्टर साहब पढ़ाने आते थे, वो भी अपने अध्यापन कार्य से अधिक, आत्मप्रशंसा व गप्पबाजी किया करते थे। इसकारण भी

शायद अमरकांत पाठ्या पुस्तकों की ओर आकर्षित नहीं हो पाये। 'चलता पुस्तकालय` से आने वाली पुस्तकों में कहानियाँ, उपन्यास, हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ, योगाभ्यास तथा धार्मिक और ऐतिहासिक किताबें हुआ करती थीं।

उम्र के इस पड़ाव पर भी अमरकांत का लेखन कार्य जारी है। मई 2006 में मैं इलाहाबाद स्थित उनके निवास पर जब साक्षात्कार हेतु पहुँचा तो कई नई बातें ज्ञात हुई। जैसे की 'बहाव` नामक पत्रिका का अमरकांत के संपादकत्व में निकलना। पहला अंक निकल चुका था और अमरकांत अपने छोटे पुत्र अरविंद के साथ मिलकर दूसरे अंक को निकालने की तैयारी में थे। अमरकांत ने बताया कि वे एक नाटक भी लिखना चाह रहे हैं। एक और पुस्तक 'खबर का सूरज आकाश में` पर भी उनका कार्य जारी था। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए भी अमरकांत नियमित रूप से लिखते रहते हैं। अभी वे बहुत कुछ लिखना चाहते हैं किंतु अब उनका स्वास्थ उनका साथ नहीं दे रहा।

किसी के भी व्यक्तित्व के निर्माण में परिवार, परिवेश और शिक्षा आदि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कथाकार अमरकांत का पारिवारिक वातावरण साहित्यिक नहीं था। फिर भी साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बहुत सारी बातें विरासत में अमरकांत को परिवार से ही मिली। 'जरि गइले एड़ी कपार` नामक लेख में शेखर जोशी ने इसी बात की चर्चा करते हुए लिखा है कि, "किस्सागोई और व्यंग्य का ऐसा अनोखा वातावरण अमरकांत को अपने परिवार से विरासत में मिला है।``9 अमरकांत को अपनी कई कहानियों की प्रेरणा परिवार के सदस्यों के द्वारा ही प्राप्त हुई है।

अपनी इन्हीं कुछ कहानियों के बारे में अमरकांत स्वयं कहते हैं कि, "..... रजुआ - वो करेक्टर है उसमें। बलिया में ही देखा था उसे हमने। हमारे वाले मुहल्ले का ही था वह। करीब दस एक दिन लगे होंगे - कम्पलीट हो गयी। इसके पूरा होते ही दूसरी लठा ली। एक दिन की भी देर नहीं की। ये भी हमारे परिवार की थी। भाई लॉ करके बलिया आ गये थे। बलिया जैसे छोटे शहर में रहकर उनका बिना सुविधा, अपने बूते आई.ए.एस. में बैठना। सिम्पिली सिटी के मास्टर थे वे। ....उत्साह, पिता की आशाएँ, प्रतीक्षा ....आप 'डिप्टी कलक्टरी` में देख सकते हैं....।``10

अमरकांत के व्यक्तित्व के निर्माण में उनके व्यक्तिगत संघर्ष की अहम भूमिका रही। उन्होंने कभी भी परिस्थितियों के आगे घुटने नहीं टेके। हर हाल में वे एक आम व्यक्ति की तरह संघर्ष करते रहे, शोषण का शिकार होते रहे और पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन के लिए हर तरह के कष्ट को गले लगाते रहे। उनका यही भोगा हुआ यथार्थ उनके कथा साहित्य में अपनी पूरी समग्रता के साथ प्रस्तुत हुआ है।

अमरकांत के व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण बात थी 'ईमानदारी`। अमरकांत ने हमेशा अपना काम पूरी ईमानदारी के साथ किया। वे कई पत्र-पत्रिकाओं के संपादन कार्य से जुड़े रहे। इसके बावजूद वे 'अवसरवादी` नहीं बने। शेखर जोशी जी इसी बात की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि, "आम तौर पर किसी पत्रिका के संपादन से जुड़ना नेतृत्व और आत्मप्रचार के लिए अच्छा अवसर प्रदान करता है। अनेकों महत्वाकांक्षी लोग इस अवसर का भरपूर लाभ उठाते देखे गए हैं। लेकिन अमरकांत में या तो वैसी प्रतिभा नहीं थी या यह उनके मिजाज में नहीं है।``

अमरकांत का जन्म उत्तर प्रदेष के बलिया जिले के नगारा गांव में हुआ था। उनके साहित्य जीवन का आरंभ एक पत्रकार के रूप में हुआ। सन् 1942 में वे स्वतंत्रता-आदोलन से जुड़ गए । अमरकांत हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद के बाद यथार्थवादी धारा के प्रमुख कहानीकार थे। यषपाल उन्हें गोर्की कहा करते थे। उन्होंने कई पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया । कहानीकार के रूप में उनकी ख्याति सन् 1955 में डिप्टी कलेक्टरी कहानी से हुई। उनके कहानी संग्रह में जिंदगी और जोंक देष के लोग मौत का नगर ष्मित्र मिलन तथा अन्य कहानियां ष् और ष्औरत का क्रोधष् आदि हैं। उनके द्वारा रचित उपन्यासों में ष्सूखा पत्ताष् ष्काले-उजले दिनष्

ए ष् कंटीली राह के फूलष्ए ष्ग्राम सेविकाष्ए ष्पराई डाल का पंछीष् ;बाद में ष्सुखजीवी नामष् से प्रकाषित द्धए ष्बीच की दीवारष् ष्इन्ही हथियारों सेष् आदि प्रमुख हैं। उन्होंने बाल साहित्य किया था जिनमें ष्नेरूर भाईष्ए ष्वानर सेना आदि प्रमुख रचनाएं हैं। उनकी रचनाओं के लिए उन्हें सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से स्म्मानित किया गया। उन्हें श्रीलाल षुक्ल के साथ संयुक्त रूप से ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया । 17 फरवरी , 2014 को उनका निधन हो गया ।

डॉ. सुनील कुमार परीट

९. श्रीलाल शुक्ल

राग दरबारी
श्रीलाल शुक्ल

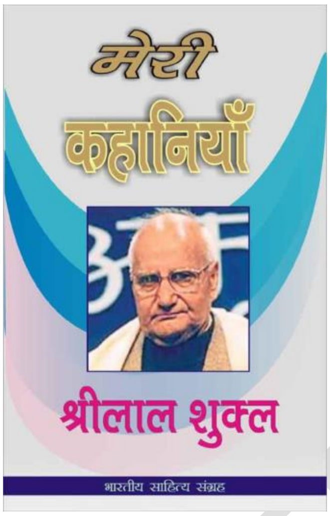
मेरी कहानियाँ
श्रीलाल शुक्ल
भारतीय साहित्य संग्रह

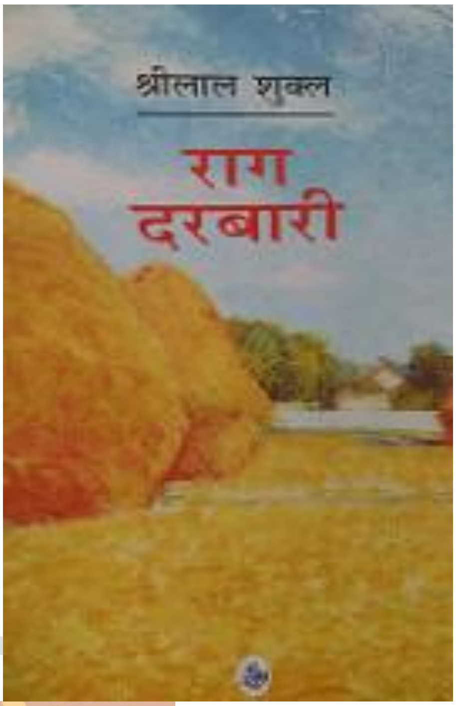
श्रीलाल शुक्ल
राग दरबारी

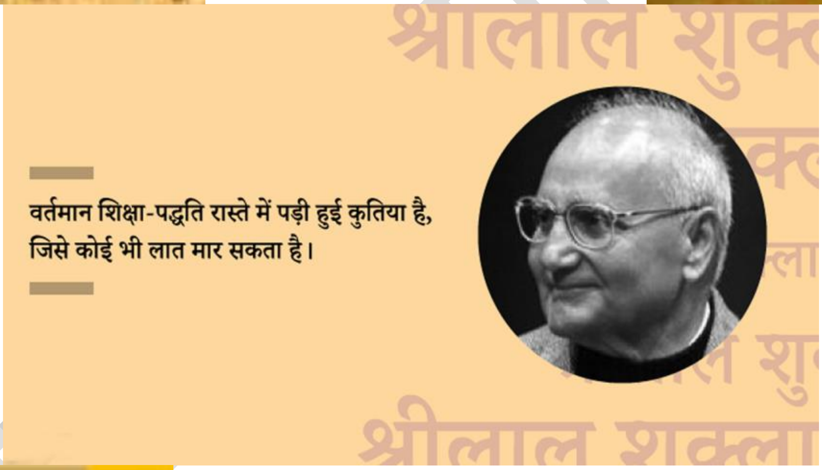
वर्तमान शिक्षा-पद्धति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है,
जिसे कोई भी लात मार सकता है।

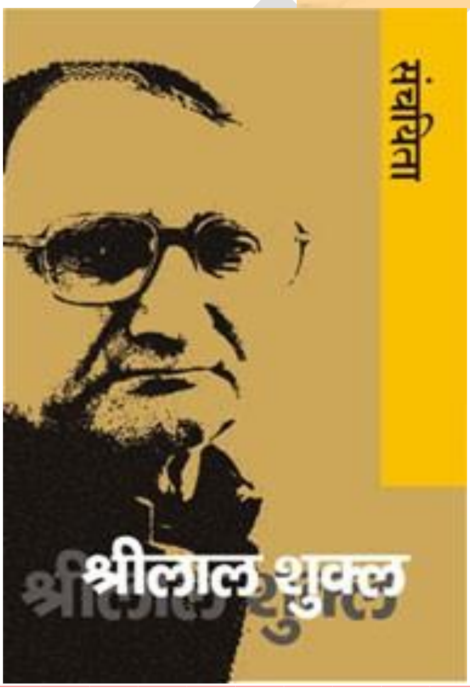
संचयिता
श्रीलाल शुक्ल

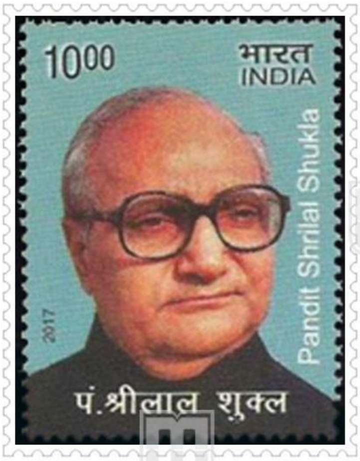
भारत
INDIA
Pandit Shrilal Shukla
2017
पं.श्रीलाल शुक्ल

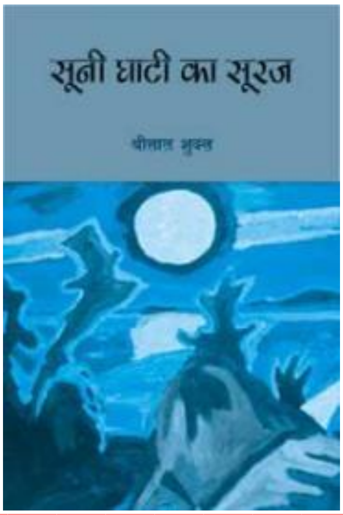
सूनी घाटी का सूरज

श्रीलाल शुक्ल (31 दिसम्बर 1925 - 28 अक्टूबर 2011) हिन्दी के प्रमुख साहित्यकार थे। वह समकालीन कथा-साहित्य में उद्देश्यपूर्ण व्यंग्य लेखन के लिये विख्यात थे।

श्रीलाल शुक्ल

चित्र:Srilal.JPG

श्रीलाल शुक्ल

जन्म:	31 दिसम्बर 1925 ई॰ अतरौली गाँव, लखनऊ उत्तर-प्रदेश, भारत
मृत्यु:	28 अक्टूबर 2011 ई॰ लखनऊ,उत्तर प्रदेश, भारत
कार्यक्षेत्र:	उपन्यासकार व व्यंग्यकार के रूप में प्रतिष्ठित, 130 से अधिक पुस्तकों का लेखन।
राष्ट्रीयता:	भारतीय
भाषा:	अवधी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत और हिन्दी
काल:	आधुनिक काल
विधा:	व्यंग्य, उपन्यास, विनिबंध, आलोचना
प्रमुख कृति(याँ):	सूनी घाटी का सूरज, आओ बैठ लें कुछ देर, अंगद का पांव, राग दरबारी, अज्ञातवास, आदमी का ज़हर, इस उम्र में, उमराव नगर में कुछ दिन, कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में, ख़बरों की जुगाली, विश्रामपुर का संत, मकान, सीमाएँ टूटती हैं, संचयिता, जहालत के पचास साल, यह घर मेरा नहीं है
हस्ताक्षर:	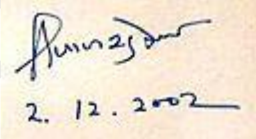

साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1999 में व्यास सम्मान, 2005 में यश भारती, 2008 में पद्मभूषण, 2009 का ज्ञानपीठ सम्मान 18 अक्टूबर 2011, लोहिया सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, शरद जोशी सम्मान समेत अनेक सम्मान व पुरस्कार।

1949 में राज्य सिविल सेवा (पी.सी.एस.) में चयनित, 1983 में भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) से सेवानिवृत्त।

श्रीलाल शुक्ल (जन्म-31 दिसम्बर 1925 - निधन- 28 अक्टूबर 2011) को लखनऊ जनपद के समकालीन कथा-साहित्य

में उद्देश्यपूर्ण व्यंग्य लेखन के लिये विख्यात साहित्यकार माने जाते थे। उन्होंने 1947 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा पास की। 1949 में राज्य सिविल सेवासे नौकरी शुरू की। 1983 में भारतीय प्रशासनिक सेवा से निवृत्त हुए। उनका विधिवत लेखन 1954 से शुरू होता है और इसी के साथ हिंदी गद्य का एक गौरवशाली अध्याय आकार लेने लगता है। उनका पहला प्रकाशित उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' (1957) तथा पहला प्रकाशित व्यंग 'अंगद का पाँव' (1958) है। स्वतंत्रता के बाद के भारत के ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को परत दर परत उघाड़ने वाले उपन्यास 'राग दरबारी' (1968) के लिये उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। उनके इस उपन्यास पर एक दूरदर्शन-धारावाहिक का निर्माण भी हुआ। श्री शुक्ल को भारत सरकार ने 2008 में पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया है।[1]

व्यक्तित्व

श्रीलाल शुक्ल का व्यक्तित्व अपनी मिसाल आप था। सहज लेकिन सतर्क, विनोदी लेकिन विद्वान, अनुशासनप्रिय लेकिन अराजक। श्रीलाल शुक्ल अंग्रेज़ी, उर्दू, संस्कृत और हिन्दी भाषा के विद्वान थे। श्रीलाल शुक्ल संगीत के शास्त्रीय और सुगम दोनों पक्षों के रसिक-मर्मज्ञ थे। 'कथाक्रम' समारोह समिति के वह अध्यक्ष रहे। श्रीलाल शुक्ल जी ने गरीबी झेली, संघर्ष किया, मगर उसके विलाप से लेखन को नहीं भरा। उन्हें नई पीढ़ी भी सबसे ज़्यादा पढ़ती है। वे नई पीढ़ी को सबसे अधिक समझने और पढ़ने वाले वरिष्ठ रचनाकारों में से एक रहे। न पढ़ने और लिखने के लिए लोग सैद्धांतिकी बनाते हैं। श्रीलाल जी का लिखना और पढ़ना रुका तो स्वास्थ्य के गंभीर कारणों के चलते। श्रीलाल शुक्ल का व्यक्तित्व बड़ा सहज था। वह हमेशा मुस्कुराकर सबका स्वागत करते थे। लेकिन अपनी बात बिना लाग-लपेट कहते थे। व्यक्तित्व की इसी ख़ूबी के चलते उन्होंने सरकारी सेवा में रहते हुए भी व्यवस्था पर करारी चोट करने वाली **राग दरबारी** जैसी रचना हिंदी साहित्य को दी।

कार्यक्षेत्र-

सरकारी सेवा एवं लेखन। २६ साल की अवस्था से लेखन का प्रारंभ। १९८३ में राजकीय सेवा से सेवानिवृति के उपरांत लखनऊ में रहकर स्वतंत्र रूप से साहित्य साधना।

रचनाएँ

- 10 उपन्यास, 4 कहानी संग्रह, 9 व्यंग्य संग्रह, 2 विनिबंध, 1 आलोचना पुस्तक आदि उनकी कीर्ति को बनाये रखेंगे। उनका पहला उपन्यास सूनी घाटी का सूरज 1957 में प्रकाशित हुआ। उनका सबसे लोकप्रिय उपन्यास राग दरबारी 1968 में छपा। राग दरबारी का पन्द्रह भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी में भी अनुवाद प्रकाशित हुआ। राग विराग श्रीलाल शुक्ल का आखिरी उपन्यास था। उन्होंने हिंदी साहित्य को कुल मिलाकर 25 रचनाएं दीं। इनमें मकान, पहला पड़ाव, अज्ञातवास और विश्रामपुर का संत प्रमुख हैं।

उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं -

1. सूनी घाट का सूरज (1957)
2. अज्ञातवास (1962)
3. 'राग दरबारी (1968)
4. आदमी का ज़हर (1972)
5. सीमाएँ टूटती हैं (1973)
6. 'मकान (1976)
7. 'पहला पड़ाव'(1987)
8. 'विश्रामपुर का संत (1998)

9. बब्बरसिंह और उसके साथी (1999)
10. राग विराग (2001)
11. ‘यह घर मेरी नहीं (1979)
12. सुरक्षा और अन्य कहानियाँ (1991)
13. इस उम्र में (2003)
14. दस प्रतिनिधि कहानियाँ (2003)

- उनकी प्रसिद्ध व्यंग्य रचनाएँ हैं-

1. अंगद का पाँव (1958)
2. यहाँ से वहाँ (1970)
3. मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (1979)
4. उमरावनगर में कुछ दिन (1986)
5. कुछ ज़मीन में कुछ हवा में (1990)
6. आओ बैठ लें कुछ देरे (1995)
7. अगली शताब्दी का शहर (1996)
8. जहालत के पचास साल (2003)
9. खबरों की जुगाली (2005)

आलोचना

1. अज्ञेय:कुछ रंग और कुछ राग (1999)

विनिबंध

1. भगवतीचरण वर्मा (1989)
2. अमृतलाल नागर (1994)

उपन्यास: सूनी घाटी का सूरज (1957)· अज्ञातवास · रागदरबारी · आदमी का जहर · सीमाएँ टूटती हैं मकान · पहला पडाव · विश्रामपुर का सन्त · अंगद का पाँव · यहाँ से वहाँ · उमरावनगर में कुछ दिन

कहानी संग्रह: यह घर मेरा नहीं है · सुरक्षा तथा अन्य कहानियां · इस उम्र में

व्यंग्य संग्रह: अंगद का पांव · यहां से वहां · मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें · उमरावनगर में कुछ दिन · कुछ जमीन पर कुछ हवा में · आओ बैठ लें कुछ देर

आलोचना: अज्ञेय: कुछ राग और कुछ रंग

विनिबन्ध: भगवती चरण वर्मा · अमृतलाल नागर

बाल साहित्य: बढबर सिंह और उसके साथी

भाषा शैली

उन्होंने शिवपालगंज के रूप में अपनी अद्‌भुत भाषा शैली, मिथकीय शिल्प और देशज मुहावरों से गढ़ा था। त्रासदियों और विडंबनाओं के इसी साम्य ने ‘राग दरबारी’ को महान कृति बनाया, तो इस कृति ने श्रीलाल शुक्ल को महान लेखक। राग दरबारी व्यंग्य है या उपन्यास, यह एक श्रेष्ठ रचना है, जिसकी तसदीक करोड़ों पाठकों ने की है और कर रहे हैं। ‘विश्रामपुर का संत’, ‘सूनी घाटी का सूरज’ और ‘यह मेरा घर नहीं’ जैसी कृतियाँ साहित्यिक कसौटियों में खरी साबित हुई हैं। बल्कि ‘विश्रामपुर का संत’ को स्वतंत्र भारत में सत्ता के खेल की सशक्त अभिव्यक्ति तक कहा गया था।

डॉ. मृणाल कुमार परीट

राग दरबारी को इतने वर्षों बाद भी पढ़ते हुए उसके पात्र हमारे आसपास नजर आते हैं। शुक्लजी ने जब इसे लिखा था, तब एक तरह की हताशा चारों तरफ़ नजर आ रही थी। यह मोहभंग का दौर था। ऐसे निराशा भरे महौल में उन्होंने समाज की विसंगतियों को चुटीली शैली में सामने लाया था। वह श्रेष्ठ रचनाकार के साथ ही एक संवेदनशील और विनम्र इंसान भी थे।

ग्रामीण परिवेश

श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं का एक बड़ा हिस्सा गाँव के जीवन से संबंध रखता है। ग्रामीण जीवन के व्यापक अनुभव और निरंतर परिवर्तित होते परिदृश्य को उन्होंने बहुत गहराई से विश्लेषित किया है। यह भी कहा जा सकता है कि श्रीलाल शुक्ल ने जड़ों तक जाकर व्यापक रूप से समाज की छान बीन कर, उसकी नब्ज को पकड़ा है। इसीलिए यह ग्रामीण संसार उनके साहित्य में देखने को मिला है। उनके साहित्य की मूल पृष्ठभूमि ग्राम समाज है परंतु नगरीय जीवन की भी सभी छवियाँ उसमें देखने को मिलती हैं। श्रीलाल शुक्ल ने साहित्य और जीवन के प्रति अपनी एक सहज धारणा का उल्लेख करते हुए कहा है कि -

कथालेखन में मैं जीवन के कुछ मूलभूत नैतिक मूल्यों से प्रतिबद्ध होते हुए भी यथार्थ के प्रति बहुत आकृष्ट हूँ। पर यथार्थ की यह धारणा इकहरी नहीं है, वह बहुस्तरीय है और उसके सभी स्तर - आध्यात्मिक, आभ्यंतरिक, भौतिक आदि जटिल रूप से अंतर्गुम्फित हैं। उनकी समग्र रूप में पहचान और अनुभूति कहीं-कहीं रचना को जटिल भले ही बनाए, पर उस समग्रता की पकड़ ही रचना को श्रेष्ठता देती है। जैसे मनुष्य एक साथ कई स्तरों पर जीता है, वैंसे ही इस समग्रता की पहचान रचना को भी बहुस्तरीयता देती है।

सामाजिक व्यंग्य

श्रीलाल शुक्ल की सूक्ष्म और पैनी दृष्टि व्यवस्था की छोटी-से-छोटी विकृति को भी सहज ही देख लेती है, परख लेती है। उन्होंने अपने लेखन को सिर्फ राजनीति पर ही केंद्रित नहीं होने दिया। शिक्षा के क्षेत्र की दुर्दशा पर भी उन्होंने व्यंग्य कसा। **1963 में प्रकाशित उनकी पहली रचना 'धर्मयुग' शिक्षा के क्षेत्र में** व्याप्त विसंगतियों पर आधारित है। व्यंग्य संग्रह 'अंगद का पाँव' और उपन्यास 'राग दरबारी' में श्रीलाल शुक्ल ने इसे विस्तार दिया है।

शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग्य

देश के अनेक सकारी स्कूलों की स्थिति दयनीय है। उनके पास अच्छा भवन तक नहीं है। कहीं कहीं तो तंबुओं में कक्षाएँ चलाती हैं, अर्थात न्यूतम सुविधाओं का भी अभाव है। श्रीलाल शुक्ल इस पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि -

"यही हाल 'राग दरबारी' के छंगामल विद्यालय इंटरमीडियेट कॉलेज का भी है, जहाँ से इंटरमीडियेट पास करने वाले लड़के सिर्फ इमारत के आधार पर कह सकते हैं, सैनिटरी फिटिंग किस चिड़िया का नाम है। हमने विलायती तालीम तक देशी परंपरा में पाई है और इसीलिए हमें देखो, हम आज भी उतने ही प्राकृत हैं, हमारे इतना पढ़ लेने पर भी हमारा पेशाब पेड़ के तने पर ही उतरता है।"

विडंबना यह है कि आज कल अध्यापक भी अध्यपन के अलावा सब कुछ करते हैं। 'राग दरबारी' के मास्टर मोतीराम की तरह वे कक्षा में पढ़ाते कम हैं और ज़्यादा समय अपनी आटे की चक्की को समर्पित करते हैं। ज़्यादातर शिक्षक मोतीराम ही हैं, नाम भले ही कुछ भी हो। ट्यूशन लेते हैं, दुकान चलाते हैं और तरह तरह के निजी धंधे करते हैं। छात्रों को देने के लिए उनके पास समय कहाँ बचता है?

समसामयिक स्थितियों पर व्यंग्य

श्रीलाल शुक्ल ने अपने साहित्य के माध्यम से समसामयिक स्थितियों पर करारी चोट की है। वे कहते हैं कि -

‘आज मानव समाज अपने पतन के लिए खुद जिम्मेदार है। आज वह खुलकर हँस नहीं सकता। हँसने के लिए भी ‘लाफिंग क्लब’ का सहारा लेना पड़ता है। शुद्ध हवा के लिए ऑक्सीजन पार्लर जाना पड़ता है। बंद बोतल का पानी पीना पड़ता है। इंस्टेंट फूड़ खाना पड़ता है। खेलने के लिए, एक-दूसरे से बात करने के लिए भी वक़्त की कमी है।’
कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि श्रीलाल शुक्ल के साहित्य में जीवन का संघर्ष है और उनका साहित्य सामाजिक सरोकारों से जुड़ा है।

पुरस्कार

1969 में श्रीलाल शुक्ल को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। लेकिन इसके बाद ज्ञानपीठ के लिए 42 साल तक इंतज़ार करना पड़ा। इस बीच उन्हें **बिरला फ़ाउन्डेशन का व्यास सम्मान, यश भारती और पद्म भूषण** पुरस्कार भी मिले। लंबे समय से बीमार चल रहे शुक्ल को 18 अक्टूबर को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल बी. एल. जोशी ने अस्पताल में ही ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया था। वर्ष 2008 में शुक्ल को पद्मभूषण पुरस्कार नवाजा गया था। वह **भारतेंदु नाट्य अकादमी लखनऊ** के निदेशक तथा **भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की मानद फैलोशिप** से भी सम्मानित थे।

यात्राएँ

एक लेखक के रूप में श्रीलाल शुक्ल ने ब्रिटेन, जर्मनी, पोलैंड, सूरीनाम, चीन, यूगोस्लाविया जैसे देशों की यात्रा कर भारत का प्रतिनिधित्व किया था।

निधन

ज्ञानपीठ पुरस्कार और पद्म भूषण से सम्मानित तथा 'राग दरबारी' जैसा कालजयी व्यंग्य उपन्यास लिखने वाले मशहूर व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल को 16 अक्टूबर को पार्किंसन बीमारी के कारण उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया था। 28 अक्टूबर 2011 को शुक्रवार सुबह 11.30 बजे सहारा अस्पताल में श्रीलाल शुक्ल का निधन हो गया। वह 86 वर्ष के थे। उनके निधन पर लखनऊ के साहित्य जगत में शोक की लहर दौड़ गई।

टीका-टिप्पणी

- "कोई भारत रत्न नहीं, सचिन, टाटा को विभूषण" (hi में) (एचटीएम). नवभारत. अभिगमन तिथि: 2008.

'श्रीलाल शुक्ल कौन है ?'
आलेखः-अशोक कुमार शुक्ला
31 दिसम्बर सन् 1925 को लखनऊ जिले के जिस कस्बे अतरौली में श्री लाल शुक्ल जी का जन्म हुआ वह कस्बा भौगोलिक रूप से तो जनपद लखनऊ का हिस्सा था परन्तु वास्तव में जनपद सीतापुर और हरदोई की सांझी संस्कृति के कस्बे के रूप में जाना जाता रहा है। इसी कस्बे में पुश्तैनी तौर पर छोटे खेेतिहरों के परिवार में पंडित श्री लाल शुक्ल का जन्म हुआ था। इनके पितामह संस्कृत उर्दू और फारसी के ज्ञानी थे तथ पास के ही विद्यालय में अध्यापकी करते थे। कुछ समय बाद नौकरी से इस्तीफा देकर एक किसान भर रह गये थे। इनके पिता संगीत के शौकीन थे और पितामह द्वारा एकत्र की गयी खेेती से जीवन यापन करते हुये 1946 में स्वर्ग सिधार गये । तब तक श्री लाल प्रयाग में बी0 ए0 की शिक्षा ही ग्रहण कर रहे थे। पिता की मृत्यु के उपरांत 1947 में श्रीलाल अपनी आगे की पढाई के लिये लखनऊ विश्वविद्यालय आ गये और 1948 में एम0 ए0 करने के उपरांत यहीं कानून की कक्षा में प्रवेश लिया। इसी दौरान उनका विवाह हो गया और कानून की पढाई आगे जारी न रह सकी। पत्नी के रूप में उन्हे जो सुशील कन्या मिली यह उसकी ही सद्प्रेरणा का प्रभाव था कि वर्ष 1949 में उत्तर प्रदेश की प्रतिष्ठित सिविल सेवा में उनका चयन हो गया । इनके सक्रिय लेखन की शुरूआत के संबंध मे उन्होेेने स्वयं अपने एक अंगेजी लेख में इस प्रकार लिखा हैः- “ ----अगर

किशोरावस्था के अनाचार शुमार न किये जायें तो साहित्य में मेरे प्रयोग 26 साल की काफी परिपक्व अवस्था से शुरू हुए।(सिविल सर्वेन्ट की हैसियत से मेरा कैरियर पहले ही शुरू हो गया था) यह सन्1953-54 की बात है। उस समय मै बुन्देलखण्ड के राठ नामक परम अविकसित क्षेत्र में एक डाक बंगले में रहता था और ऐक बैटरी वाल रेडियो , दो राइफले , एक बन्दूक, एक खचडा आस्टिन, मुट्ठी भर किताबें (ज्यादातर रिप्रिंट सोसाइटी के प्रकाशन) एकाध पत्रिकायें, कभी शिकवा न करने वाली बीबी और दो बहुत छोटे बच्चे, जिन्होंने स्थानीय बोली के सौंदर्य के प्रति उन्मुख होना भर शुरू किया था, यही मेरे सुख के साधन थे।

एक दिन आकाशवाणी के एक नाटका का रोमांटिक धुआंधार (जो आकाशवाणीके नाटकों आदि में ंहमेशा बलबलाता रहता है) झेलने में अपने को बेकाबू पाकर और लगभग हिंसात्मक विद्रोह करते हुये मैने ‘स्वर्णग्राम और वर्षा ’ नामक लेख लिखा और उसे धर्मवीर भारती को भेज दिया। आकाशवाणी क उस वर्षा सम्बन्धी नाटका पर मेरी यह प्रतिक्रिया रडियो सेट उठाकर पटक देने के मुकाबले कम हानिकर थी । बहरहाल वह लेख छपा **‘निकष’** में, जो तत्कालीन हिंदी लेखन में एक विश्ोष स्तर की प्रतिभा के साथ उसी स्तर की स्नाबरी से जुडकर निकलने वाला एक नियतकालीन संकलन थां उसके बाद ही भारती से कई जगह से पूछा जाने लगा कि श्रीलाल शुक्ल कौन है?-----’’

विद्यमान परिस्थितियों पर पैनी और व्यंग्यात्मक द्वष्टि श्री लाल शुक्ल की रचनाओं की विशेषता रही है। किसी व्यवस्था मे विद्यमान अडचनंोंा पर प्रत्यक्ष चोट करना उनका मंतव्य न रहा हो, ऐसा कहना तब प्रासंगिक नहीं रह जाता जब आप ‘राग दरबारी’ जैसी कालजयी रचना पढते हैं।

राजकीय सेवाओं की बाध्यता और लेखक की कशमकश उनके ही एक लेख की निम्न पंक्तियों से समझी जा सकती हैः-

‘‘ ---‘राग दरबारी’ के प्रकाशन के समय इस बाहरी प्रतिबंध का मुझे गहराई से अनुभव हुआ था और यह केवल उत्तर प्रदेश शासन की सदाशयता थी कि उस समय मेरे लिये नौकरी छोडना लाजमी नहीं हुआ-----’’

1983 में अधिवर्षता पर राजकीय सेवा से सेवानिवृति के उपरांत लखनऊ में रहकर श्री लाल शुक्ल अनवरत साहित्य साधना कर रहे हैं। अपराधिक पृष्ठभूमि पर लिखा उनका उपन्यास ‘सीमाऐं टूटती हैं’ इस धारणा का खंडन करता है कि अपराध कथाऐं साहित्यिक नहीं हो सकती। धर्मवीर भारती के लोकप्रिय उपन्यास ‘गुनाहों का देवता’ का नायक शोध-छात्र चन्दर जहां अपने आदर्शों को जीता हुआ सुधा के प्रति निष्छल प्रेम को अपनी ताकत समझता है और कहता है कि वह कभी गिर नहीं सकता जब तक सुधा उसकी आत्मा में गुंथी हुयी है वहीं ‘सीमाऐं टूटती हैं’ की शोध-छात्रा चांद अपने सहपाठी शोध-छात्र मुकर्जी के प्रेम को सिरे से नकारती हुयी अपने पिता की कैद के जिम्मेदार अधेड विमल के प्रति पारिवारिक विद्रोह की सीमा तक आसक्त होती जाती है। अपराध कथा के प्रभाव वाली यह कथा कृति एक ऐसे जीवन की कथा है जो पाठक को सहज अवरोह के साथ अंततः मानवीय नियति की गहराइयों में उतार देती है। इसी के पात्र विमल के शब्दों में:-

‘‘-- मैं जानता हूं कि रेगिस्तानी हरियाली पर इस तरह खुलकर हमला नहीं करता वह चुपके से अंधेरे में बढता है और जहॉ कुछ दिन पहले फूल खिले थे, वहॉ बालू रह जाती है। उपरी हरियाली का क्या भरोसा? क्या पता कि उसके आस-पास जमीन की अंदरूनी पर्तों में किधर से रेगिस्तान बढता चला आ रहा है---’’

इनकी रचनाओं मंे **‘सूनी घाटी का सूरज’(1957, उपन्यास), ‘अज्ञातवास’(1962,उपन्यास),‘‘राग दरबारी’ (1968,उपन्यास) ‘आदमी का जहर ’(1972 उपन्यास), सीमाऐ टूटती हैं’ (1973, उपन्यास), ‘मकान’(1976 उपन्यास), पहला पडाव’(1987 उपन्यास), ‘विश्रामपुर का सन्त’(1998, उपन्यास), बब्बर सिंह और उसके साथी’(1999,उपन्यास), ‘राग विराग’(2001,उपन्यास), अंगद के पांव’(1958,व्यंग्य निबंध), ‘यहां से वहां’(1970,व्यंग्य निबंध), मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें’(1979,व्यंग्य निबंध),‘उमरावनगर में कुछ दिन’(1986,व्यंग्य निबंध), कुछ जमीन में कुछ हवा में(1990,व्यंग्य निबंध),‘आओ बैठ लें कुछ देर’(1995,व्यंग्य निबंध),‘अगली शताब्दी के शहर(1996,व्यंग्य**

निबंध),'जहालत के पचास साल'(2003,व्यंग्य निबंध), 'खबरों की जुगाली(2005,व्यंग्य निबंध), ये घर में नहीं'(1979,लघुकथायें),सुरक्षा तथा अन्य कहानियां'(1991,लघुकथायें),इस उमर में'(2003,लघुकथायें),दस प्रतिनिधि कहानियां'(2003,लघुकथायें), मेरे साक्षातकार'(2002,संस्मरणं), कुछ साहित्य चर्चा भी'(2008,संस्मरणं), भगवती चरण वर्मा(1989,आलोचना), अमृतलाल नागर(1994,आलोचना), अज्ञेयःकुछ रंग कुछ राग(1999,आलोचना), हिन्दी हास्य व्यंग्य संकलन(2000,संपादन),आदि प्रमुख हैं।

इनके उपन्यास रागदरबारी का अनुवाद अंग्रजी सहित 16 भारतीय भाषाओं में हुआ है तथा इस पर ऐक दूरदर्शन धारावाहिक का भी निर्माण हुआ है तथा यह उपन्यास साहित्य अकादमी पुरूस्कार से भी सम्मानित हुआ है।

इन्हे मिले पुरूस्कारों की सूची भी लम्बी हैः-**1970 में राग दरवारी के लिये साहित्य अकादमी पुरूस्कार पाने के उपरांत 1978 में मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य परिषद द्वारा पुरूस्कृत 1988 में हिन्दी संस्थान का साहित्य भूषण पुरूस्कार, 1991 मे ं कुरूक्षेत्र विश्व विद्यालय द्वारा गोयल साहित्यिक पुरूस्कार, 1994 में हिन्दी संस्थान का लोहिया सम्मान पुरूस्कार, 1996 में मध्य प्रदेश सरकार का शरद जोशी सम्मान पुरूस्कार, 1997 में मध्य प्रदेश सरकार का मैथिली शरण गुप्त सम्मान द्वारा पुरूस्कृत, 1999 में विरला फाउन्डेशन का व्यास सम्मान पुरूस्कृत, 2005 में उत्तर प्रदेश सरकार का यश भारती सम्मान, 2008 भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्म भूषण से अलंकृत,** इनके जीवन के 80 वर्ष पूरे होने पर दिसम्बर 2005 में नयी दिल्ली में इनके सम्मान में एक समारोह का आयोजन हुआ जिसमें इनके जीवन पर आधारित पुस्तक ''श्रीलाल शुक्लः जीवन ही जीवन'' का विमोचन भी हुआ। यह पुस्तक श्रीलाल शुक्ल के बारे में उनके पारिवारिक सदस्यों, साहित्यिक मित्रों आदि द्वारा अपने लेखों से पूर्ण की गयी है जिसमें महान आलोचक डा0 नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, अशोक बाजपेई, दूधनाथ सिंह, निर्मला जैन, लीलाधर जगुडी, रधुवीर सहाय आदि शामिल हैं। श्रीलाल षुक्ल का जन्म उत्तर प्रदेष में लखनऊ जिले के अतरौली गांव में 31 दिसंबर, 1925 ई, को हुआ था। उनकी प्रमुख कृतियों में सूनी घाटी का सूरज आओ बैठ लें कुछ देर अंगद का पांव, ष्राग दरबारीष्ए ष्अज्ञातवासष्ए ष्आदमी का जहरष्ए ष्इस उम्र मेंष्ए उम्राव नगर में कुछ दिनष्ए कुछ जमीन पर कुछ हवा मेंष्ए ष्यह घर मेरा नहीं हैष् आदि प्रमुख हैं। उनका पहला प्रकाषित उपन्यास ष्सूनी घाटी का सूरजष् तथा पहला प्रकाषित व्यंग संग्रह ष्अंगद का पांवष् है। स्वतंत्रता के बाद के बाद के भारत के ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को परत दर परत उघाड़ने वाले उपन्यास ष्राग दरबारीष् के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। श्रीलाल षुक्ल को भारत सरकार ने 2008 में पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया। उन्हें अमरकांत के साथ संयुक्त रूप से ज्ञानपीठ परस्कार से सम्मानित किया गया। 28 अक्टूबर, 2011 को उनकी मृत्यु हो गई ।

१०. केदारनाथ सिंह

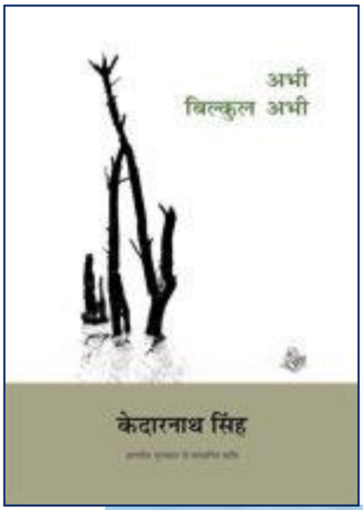
अभी
बिल्कुल अभी
केदारनाथ सिंह

मेरे समय के शब्द
केदारनाथ सिंह

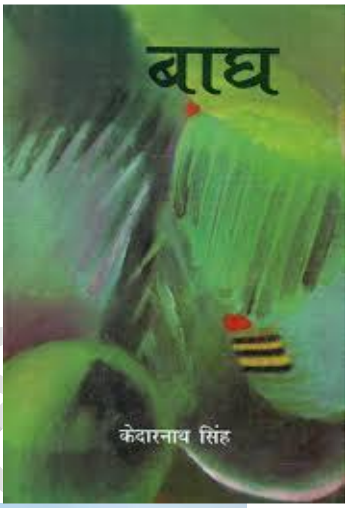
बाघ
केदारनाथ सिंह

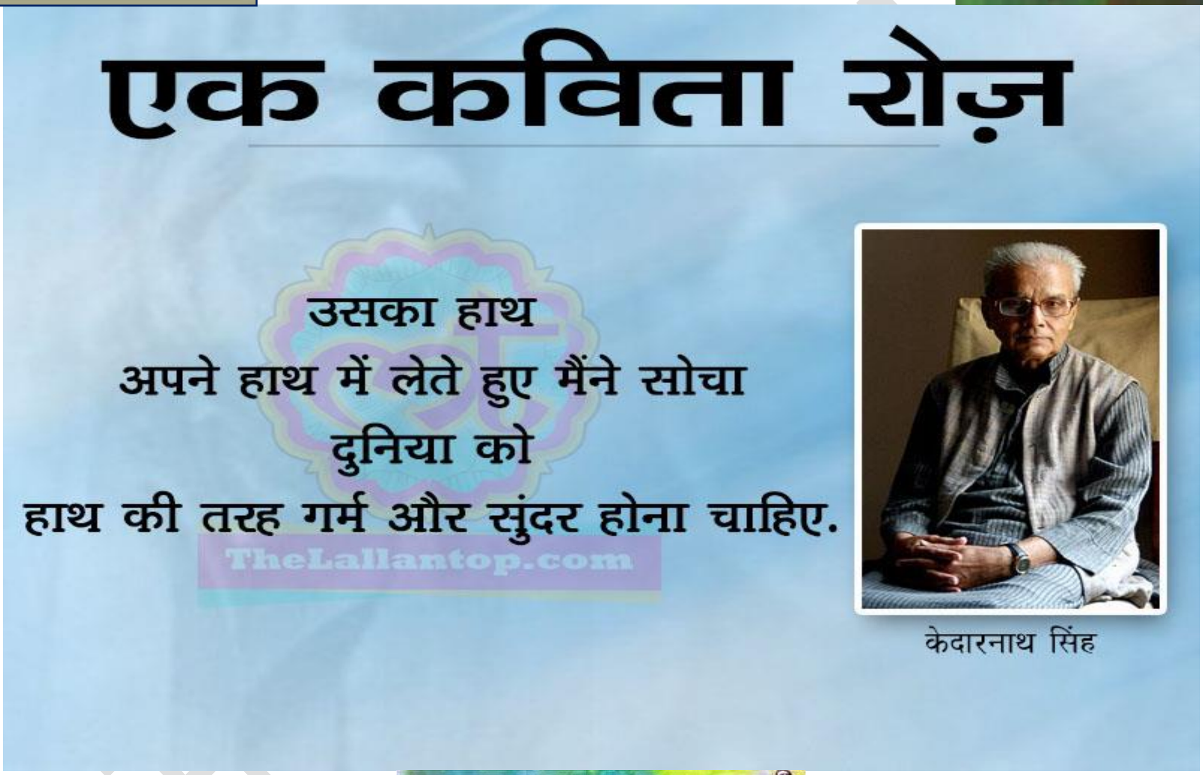
एक कविता रोज़
उसका हाथ
अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा
दुनिया को
हाथ की तरह गर्म और सुंदर होना चाहिए.
TheLallantop.com
केदारनाथ सिंह

उत्तर कबीर

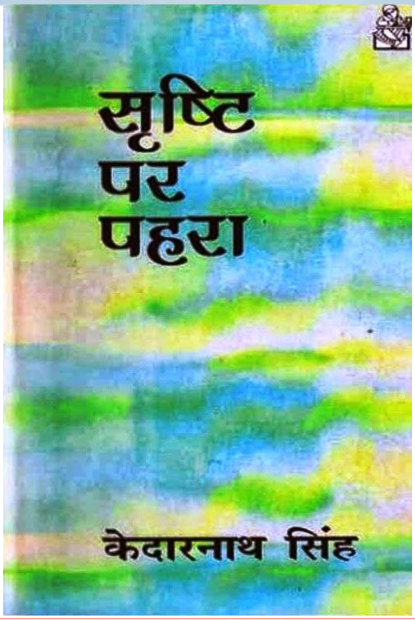
सृष्टि
पर
पहरा
केदारनाथ सिंह

कब्रिस्तान में पंचायत
केदारनाथ सिंह

केदारनाथ सिंह

व

केदारनाथ सिंह

जन्म	1934 चकिया गाँव, बलिया जिला, उत्तर प्रदेश
राष्ट्रीयता	भारतीय
व्यवसाय	कवि
पुरस्कार	साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार

केदारनाथ सिंह (जन्म १९३४ ई.) हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं। वे अज्ञेय द्वारा सम्पादित तीसरा सप्तक के कवि हैं। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा उन्हें वर्ष 2013 का 49 वां ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने का निर्णय किया गया।[1] वे यह पुरस्कार पाने वाले हिन्दी के 10 वें लेखक हैं।[2][3]

जीवन परिचय

केदारनाथ सिंह का जन्म 1 july 1934 ई॰ में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के चकिया गाँव में हुआ था। उन्होंने बनारस विश्वविद्यालय से 1956 ई॰ में हिन्दी में एम॰ए॰ और 1964 में पी-एच॰ डी॰ की उपाधि प्राप्त की। वे जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में भारतीय भाषा केंद्र में बतौर आचार्य और अध्यक्ष काम कर चुके हैं।[4] केदारनाथ सिंह का जन्म 1934 में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के चकिया गाँव में हुआ था। इन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू) से 1956 में हिन्दी में एम.ए. और 1964 में पी.एच.डी की। केदारनाथ सिंह ने कई कालेजों में पढ़ाया और अन्त में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए। इन्होंने कविता व गद्य की अनेक पुस्तकें रची हैं और अनेक सम्माननीय सम्मानों से सम्मानित हुए। आप समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। केदारनाथ सिंह की कविता में गाँव व शहर का द्वन्द्व साफ नजर आता है। 'बाघ' इनकी प्रमुख लम्बी कविता है, जो मील का पत्थर मानी जा सकती है।

साहित्यिक परिचय

यह कहना काफ़ी नहीं कि केदारनाथ सिंह की काव्य-संवेदना का दायरा गांव से शहर तक परिव्याप्त है या यह कि वे एक साथ गांव के भी कवि हैं तथा शहर के भी। दरअसल केदारनाथ पहले गांव से शहर आते हैं फिर शहर से गांव, और इस यात्रा के क्रम में गांव के चिह्न शहर में और शहर के चिह्न गांव में ले जाते हैं। इस आवाजाही के चिह्नों को पहचानना कठिन नहीं हैं, परंतु प्रारंभिक यात्राओं के सनेस बहुत कुछ नए दुलहन को मिले भेंट की तरह है, जो उसके बक्से में रख दिए गए हैं। परवर्ती यात्राओं के सनेस में यात्री की अभिरुचि स्पष्ट दिखती है, इसीलिए 1955 में लिखी गई 'अनागत' कविता की बौद्धिकता धीरे-धीरे तिरोहित होती है, और यह परिवर्तन जितना केदारनाथ सिंह के लिए अच्छा रहा, उतना ही हिंदी साहित्य के लिए भी। बहुत कुछ नागार्जुन की ही तरह केदारनाथ के कविता की भूमि भी

गांव की है। दोआब के गांव-जवार, नदी-ताल, पगडंडी-मेड़ से बतियाते हुए केदारनाथ न अज्ञेय की तरह बौद्धिक होते हैं न प्रगतिवादियों की तरह भावुक। केदारनाथ सिंह बीच का या बाद का बना रास्ता तय करते हैं। यह विवेक कवि शहर से लेता है, परंतु अपने अनुभव की शर्त पर नहीं, बिल्कुल चौकस होकर। केदारनाथ सिंह की कविताओं में जीवन की स्वीकृति है, परंतु तमाम तरलताओं के साथ यह आस्तिक कविता नहीं है।[1]

मैं जानता हूं बाहर होना एक ऐसा रास्ता है
जो अच्छा होने की ओर खुलता है
और मैं देख रहा हूं इस खिड़की के बाहर
एक समूचा शहर है

सम्मान और पुरस्कार

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतीकः वाग्देवी की कांस्य प्रतिमा

केदारनाथ सिंह को मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, कुमारन आशान पुरस्कार, जीवन भारती सम्मान, दिनकर पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, व्यास सम्मान आदि पुरस्कारों मिल चुके हैं।[6]

- मैथिलीशरण गुप्त सम्मान
- कुमारन आशान पुरस्कार
- जीवन भारती सम्मान
- दिनकर पुरस्कार
- साहित्य अकादमी पुरस्कार
- व्यास सम्मान

जूते / केदारनाथ सिंह

सभा उठ गई
रह गए जूते
सूने हाल में दो चकित उदास
धूल भरे जूते
मुँहबाए जूते जिनका वारिस
कोई नहीं था

चौकीदार आया
उसने देखा जूतों को
फिर वह देर तक खड़ा रहा
मुँहबाए जूतों के सामने
सोचता रहा -
कितना अजीब है
कि वक्ता चले गए
और सारी बहस के अंत में

डॉ सुनील कुमार परीट

रह गए जूते

उस सूने हाल में
जहाँ कहने को अब कुछ नहीं था

कितना कुछ कितना कुछ
कह गए जूते

समाचार

शुक्रवार, 20 जून, 2014

प्रख्यात कवि केदारनाथ सिंह को मिला ज्ञानपीठ पुरस्कार

हिंदी की आधुनिक पीढ़ी के रचनाकार केदारनाथ सिंह को वर्ष 2013 के लिए देश का सर्वोच्च साहित्य सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया जाएगा। वह यह पुरस्कार पाने वाले हिन्दी के 10वें लेखक हैं। ज्ञानपीठ की ओर से शुक्रवार 20 जून, 2014 को यहां जारी विज्ञप्ति के अनुसार सीताकांत महापात्रा की अध्यक्षता में हुई चयन समिति की बैठक में हिंदी के जाने माने कवि केदारनाथ सिंह को वर्ष 2013 का 49वां ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने का निर्णय किया गया। केदारनाथ सिंह इस पुरस्कार को हासिल करने वाले हिंदी के 10वें रचनाकार है। इससे पहले हिन्दी साहित्य के जाने माने हस्ताक्षर सुमित्रानंदन पंत, रामधारी सिंह दिनकर, सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन अज्ञेय, महादेवी वर्मा, नरेश मेहता, निर्मल वर्मा, कुंवर नारायण, श्रीलाल शुक्ल और अमरकांत को यह पुरस्कार मिल चुका है। पहला ज्ञानपीठ पुरस्कार मलयालम के लेखक गोविंद शंकर कुरुप (1965) को प्रदान किया गया था। पुरस्कार के रूप में प्रो. केदारनाथ सिंह को 11 लाख रुपये, प्रशस्ति पत्र और वाग्देवी की प्रतिमा प्रदान की जाएगी।

मुख्य कृतियाँ

कविता संग्रह

- अभी बिल्कुल अभी
- जमीन पक रही है[5]
- यहाँ से देखो[6]
- बाघ[5]
- अकाल में सारस[5]
- उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ[6]
- तालस्ताय और साइकिल[6]
- सृष्टि पर पहरा

आलोचना

- कल्पना और छायावाद[6]
- आधुनिक हिंदी कविता में बिंबविधान[6]
- मेरे समय के शब्द[6]
- मेरे साक्षात्कार[6]

संपादन

- ताना-बाना (आधुनिक भारतीय कविता से एक चयन)[6]
- समकालीन रूसी कविताएँ[6]
- कविता दशक[6]
- साखी (अनियतकालिक पत्रिका)[6]
- शब्द (अनियतकालिक पत्रिका [6]

नए कवि का दुख / केदारनाथ सिंह

दुख हूँ मैं एक नये हिन्दी कवि का
बाँधो
मुझे बाँधो
पर कहाँ बाँधोगे
किस लय, किस छन्द में?

ये छोटे छोटे घर
ये बौने दरवाजे
ताले ये इतने पुराने
और साँकल इतनी जर्जर
आसमान इतना जरा सा

और हवा इतनी कम कम
नफरतयह इतनी गुमसुम सी
और प्यार यह इतना अकेला
और गोल -मोल
बाँधो
मुझे बाँधो

पर कहाँ बाँधोगे
किस लय , किस छन्द में?
क्या जीवन इसी तरह बीतेगा
शब्दों से शब्दों तक
जीने
और जीने और जीने और जीने के
लगातार द्वन्द में?

विशेष : केदारनाथ सिंह चर्चित कविता संकलन 'तीसरा सप्तक' के सहयोगी कवियों में से एक हैं। इनकी कविताओं के अनुवाद लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, स्पेनिश, रूसी, जर्मन और हंगेरियन आदि विदेशी भाषाओं में भी हुए हैं। कविता पाठ के लिए दुनिया के अनेक देशों की यात्राएँ की हैं।

केदारनाथ सिंह जन्म 1934 ई, में उत्तर प्रदेष के बलिया जिले के चकिया गांव में हुआ। उन्हें मैथिलीषरण गुप्त सम्मान, कुमारन आषान पुरस्कार, व्यास सम्मान आदि से सम्मानित किया जा चुका है। वे अज्ञेय द्वारा संपादित तीसरा सप्तक के कवि है। उनके द्वारा रचित कविता संग्रहों में अभी जमीन पक रही है यहां से देखा बाघ और तालस्ताय और साइकिल आदि प्रमुख हैं। वहीं आलोचना के रूप में उन्होंने कल्पना और छायावाद आधुनिक हिंदी कविता में बिंबविधान मेरे समय के षब्द और मेरे साक्षात्कार आदि उल्लेखनीय कृतियां लिखी हैं। उन्होंने ताना-बाना समकालीन रूसी कविताएं कविता दषक और साखी आदि पुस्तकों का संपादन भी किया है। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा उन्हें वर्ष 2013 का 49 वां ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने का निर्णय किया गया । वे यह पुरस्कार पाने वाले हिंदी भाषा के 10 वें लेखक हैं

जिन गुलज़ार के साथ फोटो खिंचाने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ती है वे केदारजी के साथ फोटो खिंचवाने का इसरार कर रहे थे।

केदारनाथ सिंह के बारे में उदय प्रकाश ने लिखा है -"*क्या आइंस्टाइन का वह वाक्य याद नहीं आता, जो गांधीजी के बारे में कहा था? क्या हिंदी कविता की धरती पर ऐसा आदमी भी चलता था? हद है कि हमने उसे छुआ भी था।... यह एक वास्तविकता है कि केदारनाथ सिंह मुक्तिबोध के बाद हिंदी कविता में घटने वाली एक बड़ी और महत्वपूर्ण परिघटना हैं।...वे आग के कान में कोई 'मंत्रा' कहते हैं और हमारे आपके लिए, हमारी-आपकी भाषा में हवा उसका अनुवाद करती जाती है।*" (कथादेश, 1998)

अब जरा **विष्णु खरे** की टिप्पणी देखिए- "*केदारनाथ सिंह की कविताएं चीजों को दो तरह से 'सेलिब्रेट' करती हैं- एक तो उनके भौतिक या अ-भौतिक अर्थों और परिणामों के लिए और दूसरे, वे जो हैं, सिर्फ उनके लिए।*"

नामवर सिंह जब दूरदर्शन के अपने नियमित साप्ताहिक कार्यक्रम 'आज सवेरे' में पुस्तक चर्चा की रिकॉर्डिंग के लिए आए तो उनके हाथ में केदारनाथ सिंह का नया संग्रह '*सृष्टि पर पहरा*' (राजकमल प्रकाशन) था। यह उनका आठवां संग्रह है जो अस्सी वर्ष की उम्र में आया है। मैंने नामवर जी से पूछा-"कैसा है?"

उन्होंने कहा-"बहुत अच्छा है। अरे भाई, इस उम्र में भी केदारजी इतनी अच्छी कविताएं लिख रहे हैं, खुशी होती है। इस संग्रह में उन्होंने एक नई काव्यभाषा रची है।"

"'*दृश्यांतर*' के फरवरी अंक में उनकी कविता छाप रहे हैं। यदि एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखवा दें तो अच्छा रहेगा," मैंने अनुरोध किया।

"हां-हां, क्यों नहीं, परसों आना घर पर," उन्होंने कहा और गाड़ी में बैठ गए। मैं 'परसों' उनके घर गया तो उन्होंने डायरी देखी, फिर बोले-"अरे भाई माफ करना, आज कुछ दूसरी चीजों में उलझा हुआ हूं। परसों त्रिवेणी में विजय अग्रवाल की किताब का लोकार्पण करना है। मैं लिखकर लेते आऊंगा। तुम मुझसे वहीं ले लेना।"

मैंने जब परसों फोन किया तो उन्होंने बेचारगी से कहा-"भाई, मैं लिख नहीं पाया हूं। फिर कभी कोशिश करूंगा।" वह 'फिर कभी' आज तक नहीं आया, खैर।

केदारनाथ सिंह को सबसे पहले मैंने 1991 की सर्दियों में पटना के ए.एन. सिन्हा इंस्टीट्यूट में देखा था, फिर 21 दिसंबर, 1991 को आकाशवाणी, पटना द्वारा आयोजित काव्य पाठ में कविता पढ़ते हुए। उसके ढ़ाई साल बाद 1994 की गर्मियों में हैदराबाद से दिल्ली आते हुए ए.पी. एक्सप्रेस में वे मिल गए। तब वे 16, दक्षिणापुरम, जे.एन.यू. में रहते थे। रेलगाड़ी के लंबे सफर में उन्हें पहली बार ठीक से जानने-समझने का मौका वे आग के कान में कोई 'मंत्र' कहते हैं और हवा उसका अनुवाद करती जाती है मिला। वे दिन मेरे 'नवभारत टाइम्स' के स्वर्णिम दिनों में से एक थे। उसी समय एन.सी.ई.आर.टी. के लिए प्रवीण कुमार द्वारा उन पर बनाई गई फिल्म देखकर मैंने एक समीक्षा लिखी जो 'नवभारत टाइम्स' (1 जनवरी, 1995) में छपी "क से होता है कवि और क से कबूतर।"

धन्यवाद

संकलनकर्ता :-

डॉ. सुनील कुमार परीट

बेलगावी, कर्नाटक

08867147505, 09480006858

डॉ. सुनील कुमार परीट